देवदास

शरत्चन्द्र चटर्जी

एक दिन बैसाख के दोपहर मे जबकि चिलचिलाती हुई कड़ी धूप पड़ रही थी और गर्मी की सीमा नही थी, ठीक उसी समय मुखोपाध्याय का देवदास पाठशाला के एक कमरे के कोने मे स्लेट लिये हुए पांव फैलाकर बैठा था। सहसा वह अंगड़ाई लेता हुआ अत्यंत चिंताकुल हो उठा और पल-भर मे यह स्थिर किया कि ऐसे सुहावने समय मे मैदान मे गुड्डी उड़ाने के बदले पाठशाला मे कैद रहना अत्यंत दुखदायी है। उर्वर मस्तिष्क से एक पाय भी निकल आया। वह स्लेट हाथ मे लेकर उठ खड़ा हुआ।

पाठशाला मे अभी जलपान की छुट्टी हुई थी। लड़को का दल तरह-तरह का खेल-कूद और शोरगुल करता हुआ पास के पीपल के पड़े के नीचे गुल्ली-डंडा खेलने लगा। देवदास ने एक बार उस ओर देखा। जलपान की छुट्टी उसे नही मिलती थी; क्योकि गोविंद पंडित ने कई बार यह देखा है कि एक बार पाठशाला के बाहर जाने पर फिर लौट आना देवदास बिलकुल पसंद नही करता था उसके पिता की भी आज्ञा नही थी। अनेक कारणो से यही निश्चय हुआ था कि इस समय से वह छात्र-सरदार भूलो की देख-भाल मे रहेगा।

एक कमरे मे पंडितजी दोपहर की थकावट दूर करने के लिए आंख मूंदकर सोये थे। और छात्र सरदार भूलो एक कोने मे हाथ पांव फैलाकर एक बेच पर बैठा था और बीच-बीच मे कड़ी उपेक्षा के साथ कभी लड़को के खेल को और कभी देवदास और पार्वती को देखता जाता था। पार्वती को पंडितजी के आश्रय और निरीक्षण मे आये अभी कुल एक महीना हुआ है। पंडितजी ने संभवत: इसी थोड़े समय मे उसका खूब जी बहलाया था, इसी से एकाग्र मन से धैर्यपूर्वक सोये हुए पंडितजी का चित्र 'बोधोदय' के अंतिम पृष्ठ पर स्याही से खीच रही थी और दक्ष चित्रकार की भांति विविद भाव से देखती थी कि उसके बड़े यत्न का वह चित्र आदर्श से कहां तक मिलता है। अधिक मिलता हो, ऐसी बात नही थी, पर पार्वती को इसी से यथेष्ट आनंद और आत्मा-संतुष्टि मिलती थी।

इसी समय देवदास स्लेट हाथ मे लेकर उठ खड़ा हुआ और भूलो को लक्ष्य करके कहा- 'सवाल हल नही होता।'

भूलो ने शांत और गंभीर मुख से कहा-'कौन सा सवाल?'

'इबारती...!'

'स्लेट तो देखूं।'

उसके सब काम स्लेट हाथ मे लेने मात्र से हो जाते थे। देवदास उसके हाथ मे स्लेट देकर पास मे खड़ा हुआ। भूलो यह कहकर लिखने लगा कि एक मन तेल का दाम अगर चौदह रुपये, नौ आने, तीन पाई होता है तो...?

इसी समय एक घटना घटी। हाथ-पांव से हीन बेच के ऊपर छात्र-सरदार अपनी पद-मर्यादा के

उपयुक्त आसन चुनकर यथानियम आज तीन वर्ष से बैठता आता है। उसके पीछे एक चूने का ढेर लगा हुआ था। इसे किसी समय पंडितजी ने सस्ती दर से खरीदकर रखा था। सोचा था कि दिन लौटने पर इससे एक पक्का मकान बनवाएंगे। कब वह दिन लौटेगा, यह मै नही जानता, परंतु उसे सफेद चूने को वे बड़े यत्न और सावधानी के साथ रखते थे। संसार से अनभिज्ञ, अपरिणामदर्शी कोई दरिद्र बालक इसका एक क्षण भी नष्ट नही करने पाता था। इसीलिए प्रिय-पात्र और अपेक्षाकृत व्यस्त भोलानाथ को इस सयत्न वस्तु की सावधानी-पूर्वक रक्षा करने का भार मिला था, और इसी से वह बेच पर बैठकर उसे देखा करता था।

भोलानाथ लिखता था, एक मन तेल का दाम अगर चौदह रुपये, नौ आने, तीन पाई है तो...? 'अरे बाप रे बाप' इसके बाद बड़ा शोर-गुल मचा। पार्वती जोर से ठहाका मारकर ताली बजाकर जमीन पर लोट गई। सोये हुए गोविंद पंडित अपनी लाल-लाल आंखे मीचते हुए घबराकर उठ खड़े हुए; देखा कि पेड़ के नीचे लड़को का दल कतार बांधकर एक साथ 'हो-हो' शब्द करता हुआ दौड़ा चला जा रहा है और इसी समय दिखाई पड़ा कि टूटे बेच के ऊपर एक जोड़ा पांव नाच रहा है; और चूने मे ज्वालामुखी का विस्फोट-सा हो रहा है। चिल्लाकर पूछा-'क्या है-क्या है-क्या है रे?' उत्तर देने के लिए केवल पार्वती थी। पर वह उस समय जमीन पर लेटी हुई ताली बजा रही थी। पंडितजी का विफल प्रश्न क्रोध मे परिवर्तित हो गया-'क्या है-क्या है-क्या है रे?' इसके बाद श्वेत मूर्ति भोलानाथ चूना ठेलकर खड़ा हुआ। पंडितजी ने और चिल्लाकर कहा-'शैतान का बच्चा, तू ही है-तू ही उसके भीतर है?'

'आं-आं-आं-'

'फिर?'

'देवा साले ने -ठेलकर-आं-आं-इबारती-'

'फिर हरामजादा?'

परंतु क्षण-भर मे सारा व्यापार समझकर चटाई पर बैठकर पूछा-'देवा तुझे धक्के से गिराकर भागा है?'

भूलो अब और रोने लगा-'आं-आं-आं' इसके बाद कुछ क्षण चूने की झाड़, पोछ हुई, किंतु श्वेत और श्याम के मिल जाने के कारण छात्र-सरदार भूत की भांति मालूम पड़ने लगा ौर तब भी उसका रोना बंद नही हुआ।

पंडितजी ने कहा-'देवा धक्के से गिराकर चला गया, अच्छा।'

पंडितजी ने पूछा-'लड़के कहां है?'

इसके बाद लड़को के दल ने रक्त-मुख हांफते-हांफते लौटकर खबर दी कि 'देवा को हम लोग नही पकड़ सके। उफ! कैसा ताक के ढेला मारता है!'

'पकड़ नही सके?'

एक और लड़के ने पहले कही हुई बात को दुहराकर कहा-'उफ! कैसा!'

'थोड़ा चुप हो!'

वह दम घोटकर बगल मे बैठ गया। निष्फल क्रोध से पहले पंडितजी ने पार्वती को खूब धमकाया, फिर भोलानाथ का हाथ पकड़कर कहा-'चल एक बार जमींदार की कचहरी मे कह आवे।'

इसका तात्पर्य यह है कि जमीदार मुखोपाध्यायजी के निकट उनके पुत्र के आचरण की नालिश करेगे।

उस समय अंदाजन तीन बजे थे। नारायण मुखोपाध्यायजी बाहर बैठकर गड़गड़े पर तमाखू पीत थे और एक नौकर हाथ मे पंखा लेकर हवा झल रहा था। छात्र के सहित असमय मे पंडितजी के आगमन से विस्मित होकर उन्होने कहा–'क्या गोविंद है?'

गोविंद जाति के कायस्थ थे सो झुककर प्रणाम किया और भूलो को दिखाकर सारी बाते सविस्तार वर्णन की। मुखोपाध्यायजी ने विरक्त होकर कहा–' तब दो देवदास को हाथ से बाहर जाता हुआ देखता हूं।'

'क्या करूं, अब आप ही आज्ञा दं!'

'क्या जानूं? जो लोग पकड़ने गए, उनको ढेलो से मार भगाया।'

वे दोनो आदमी कुछ क्षण तक चुप रहे। नारायण बाबू ने कहा –'घर आने पर जो कुछ होगा, करूंगा।'

गोविंद छात्र का हाथ पकड़कर पाठशाला लौट आए तथा मुख और आंख की भाव भंगिमा से सारी पाठशाला को धमकाकर प्रतिज्ञा की कि यद्यपि देवदास के पिता उस गांव के जमीदार है, फिर भी वे उसको अब पाठशाला मे नही घुसने देगे। उस दिन की छुट्टी समय से कुछ पहले ही हो गयी। जाने के समय लड़को मे अनेको प्रकार की आलोचनाएं और प्रत्यालोचनाएं होती रही।

एक दूने कहा–'उफ! देवा कितना मजबूत है!'

दूसरे ने कहा–'भूलो को अच्छा छकाया!'

'उफ! कैसा ताककर ढेला मारता था!'

एक दूसरे ने भूलो का पक्ष लेकर कहा–'भूलो इसका बदला लेगा, देखना!'

'हिश्! वह अब पाठशाला मे थोड़े ही आएगा जो कोई बदला लेगा।'

इसी छोटे दल के एक ओर पार्वती भी अपनी पुस्तक और स्लेट लेकर घर आ रही थी। पास के एक लड़के का हाथ पकड़ पूछा–'मणि, देवदास को क्या सचमुच ही अब पाठशाला नही आने देगे?'

मणि ने कहा–'नही, किसी तरह नही आने देगे।' पार्वती हट गई, उसे यह बातचीत बिलकुल नही सुहायी। पार्वती के पिता का नाम नीलकंठ चक्रवर्ती है। चक्रवर्ती महाशय जमीदार के पड़ोसी है, अर्थात मुखोपाध्याय जी के विशाल भवन के बगल मे ही उनका छोटा–सा पुराने किते का मकान है। उनके बारह बीघे खेती–बारी है, दो चार घर जजमानी है, जमीदार के घर से भी कुछ–न–कुछ मिल जाया करता है। उनका परिवार सुखी है और दिन अच्छी तरह से कट जाता है।

पहले धर्मदास के साथ पार्वती का सामना हुआ। वह देवदास के घर का नौकर था! एक वर्ष की अवस्था से लेकर आठ वर्ष की उम्र तक वह उसके साथ है; पाठशाला पहुंचा आता है और छुट्टी के समय घर पर ले आता है, यह कार्य वह यथानियम प्रतिदिन करता है तथा आज भी इसीलिए पाठशाला गया। पार्वती को देखकर उसने कहा–'पत्तो, तेरा देव दादा कहां है?'

'भाग गये।'

धर्मदास ने बड़े आश्चर्य से कहा–'भाग! क्यो '

फिर पार्वती ने भोलानाथ की दुर्दशा की कथा को नए ढंग से स्मरण कर हंसना आरंभ किया–'देव दादा–हि–हि–हि–एक बार ही चूने की ढेर मे हि–हि–हूं–हूं–एकबागी धर्म, चित्त कर दिया..'

धर्मदास ने सब बाते न समझकर भी हंसी देखकर थोड़ा–सा हंस दिया, फिर हंसी रोककर कहा–'कहती क्यो नही पत्तो, क्या हुआ?'

'देवदास ने भूलो को धक्का देकर चूने मे गिरा...हि–हि–हि!'

धर्मदास इस बार सब समझ गया और अत्यंत चिंतित होकर कहा–'पत्तो, वह इस वक्त कहां है, तुम जानती हो?'

'तू जानती है, कह दे। हाय! हाय उसे भख लगी होगी।'

'भूख लगी होगी, पर मै कहूंगी नही।'

'क्यो नही कहेगी?'

'कहने से मुझे बहुत मारेगे। मै खाना दे आऊंगी।'

धर्मदास ने कुछ असंतुष्ट होकर कहा–'तो दे आना और संझा के पहले ही घर भुलावा देकर ले आना।'

'ले आंऊंगी।'

घर पर आकर पार्वती ने देखा कि उसकी मां और देवदास की मां ने सारी कथा सुन ली है। उससे भी सब बाते पूछी गयी। हंसकर, गंभीर होकर उससे जो कुछ कहते बना, उसने कहा। फिर आंचल मे फरूही बांधकर वह जमीदार के एक बगीचे मे घुसी। बगीचा उन लोगो के मकान के पास था और इसी मे एक ओर एक बंसवाड़ी थी। वह जानती थी कि छिपकर तमाखू पीने के लिए देवदास ने इसी बंसवाड़ी के बीच एक स्थान साफ कर रखा है। भागकर छिपने के लिए यही उसका गुप्त स्थान था। भीतर जाकर पार्वती ने देखा कि बांस की झाड़ी के बीच मे देवदास हाथ मे एक छोटा–सा हुक्का लेकर बैठा है और बड़ो की तरह धूम्रपान कर रहा है। मुख बड़ा गंभीर था, उससे यथेष्ट दुर्भावना का चिन्ह प्रकट हो रहा था। वह पार्वती को आयी देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ, किंतु बाहर प्रकट नही किया। तमाखू पीते–पीते कहा 'आओ।'

पार्वती पास आकर बैठ गयी। आंचल मे जो बंधा हुआ था, उस पर देवदास की दृष्टि तत्क्षण पड़ी। कुछ भी न पूछकर उसने पहले उसे खोलकर खाना आरंभ करते हुए कहा–'पत्तो पंडितजी ने क्या किया?'

'बड़े चाचा से कह दिया।'

देवदास ने हुंकारी भरकर, आंख तरेरकर कहा–'बाबूजी से कह दिया?'

'हां।'

'उसके बाद?'

तुमको अब आगे से पाठशाला नही जाने देगे।

'मै भी पढ़ना नही चाहता।'

इसी समय उसका खाद्य–द्रव्य प्राय: समाप्त हो चला। देवदास ने पार्वती के मुख की ओर देखकर कहा–'संदेश दो।'

'संदेश तो नही लायी हूं।'

'पानी कहां पाऊंगी?'

देवदास ने विरक्त होकर कहा–'कुछ नही है तो आयी क्यो? जाओ, पानी ले आओ।'

उसका रूखा स्वर पार्वती को अच्छा नही लगा। उसने कहा 'मैन नही जा सकती, तुम जाकर पी आओ।'

'मै क्या अभी जा सकत हूं?'

'तब क्या यही रहोगे?'

'यही पर रहूंगा, फिर कही चला जाऊंगा।'

पार्वती को यह सब सुनकर बड़ा दुख हुआ। देवदास का यह आपत्य वैराग्य देखकर और बातचीत सुनकर उसकी आंखो मे जल भर आया;–कहा मै भी चलूंगी!

'कहां?' मेरे साथ? भला यह क्या हो सकता है? पार्वती ने फिर सिर हिलाकर कहा–'चलूंगी'

'नही, यह नही हो सकता। तुम पहले पानी लाओ।'

पार्वती ने फिर सिर हिलाकर कहा–चलूंगी!

पहले पानी ले आओ।

'मैन नही जाऊंगी, तुम भाग जाओगे।'

'नही, भागूंगा नही।'

परंतु पार्वती इस बात पर विश्वास नही कर सकी, इसी से बैठी रही। देवदास ने फिर हुक्म दिया–'जाओ, कहता हूं।'

'मै नही जा सकती।'

क्रोध से देवदास ने पार्वती का केश खीचकर धमकाया। 'जाओ, कहता हूं'

पार्वती चुप रही। फिर उसने उसकी पीठ पर एक घूंसा मारकर कहा–'नही जाओगी'

पार्वती ने रोते–रोते कहा–'मै किसी तरह नही जा सकती।'

देवदास एक ओर चला गया। पार्वती भी रोते–रोते सीधी देवदास के पिता के सम्मुख आकर खड़ी हो गयी। मुखोपाध्यायजी पार्वती को बहुत प्यार करते थे। उन्होने कहा–'पत्तो, रोती क्यो है।'

'देवदास ने मारा है।'

'वह कहां है?'

'इसी बंसीवाड़ी मे बैठकर तमाखू पी रहे है।'

एक तो पंडितजी के आगमन से वह क्रोधित होकर बैठे थे, अब यह खबर पाकर वे एकदम आग–बबूला हो गये। कहा–'देवा तमाखू भी पीता है?'

'हां, पीते है, बहुत दिनो से पीते है। बंसवाड़ी के बीच मे उनका हुक्का छिपाकर रखा हुआ है।'

'इतने दिन तक मुझसे क्यो नही कहा?'

'देव दादा मारने को कहते थे।'

वास्तव मे यह बात सत्य नही थी। कह देने से देवदास मार खाता, इसी से उसने यह बात नही कही थी। आज वही बात केवल क्रोध के वशीभूत होकर उसने कहा दी। इस समय उसी वयस केवल आठ

वर्ष की थी। क्रोध अभी अधिक था; किंतु इसी से उसकी बुद्धि-विवेचना नितांत अल्प नही थी। घर जाकर वह बिछौने पर लेट गई और बहुत देर तक रोने-धोने के बाद सो गयी। उस रात को उसने खाना भी नही खाया।

2

दूसरे दिन देवदास ने बड़ी मार खायी। उसे दिन भर घर मे बंद रखा गया। फिर जब उसकी माता बहुत रोने-धोने लगी, तब देवदास को छोड़ दिया गया। दूसरे दिन भोर के समय उसने भागकर पार्वती के घर की खिड़की के नीचे आकर खड़े होकर उसे बुलाया-'पत्तो, पत्तो!'

पार्वती ने खिड़की खोलकर कहा-'देव दादा!'

देवदास न इशारे से कहा 'जल्दी आओ।'

दोनो के एकत्र होने पर देवदास ने कहा 'तुमने तमाखू पीने की बात क्यो कह दी'

'तुमने मारा क्यो'

'तुम पानी लेने क्यो नही गयी?'

पार्वती चुप रही। देवदास ने कहा- 'तुम बड़ी गदही हो, अब कभी मत कहना।'

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा-'नही कहूंगी'

'तब चलो, बांस से बंसी काट लाये। आज बांध मे मछली पकड़नी होगी।'

बंसवाड़ी के निकट एक नोना का पेड़ था, देवदास उस पर चढ़ गया। बहुत कष्ट से बांस की एक नाली नवाकर, पार्वती को पकड़ने के लिए देकर कहा-'देखो, इसे छोड़ना नही, नही तो मै गिर पड़ंगा।'

पार्वती उसे प्राणपण से पकड़े रही। देवदास उसे पकड़कर, नोना की एक डाल पर पांव रखकर बंसी काटने लगा। पार्वती ने नीचे से कहा-'देव दादा, पाठशाला नही जाओगे?'

'नही।'

'बड़े चाचा तुम्हे भेजेगे तब?'

'बाबू जी ने खुद ही कहा है कि अब मै वहां नही पढ़ूंगा। पंडितजी ही मकान पर आवेगे।'

पार्वती कुछ चिंतित हो उठी। फिर कहा-'कल से गरमी की वजह से पाठशाला सुबह की हो गयी है, अब मै जाऊंगी।'

देवदास ने ऊपर से आंख लाल करके कहा-'नही, यह नही हो सकता।'

इस समय पार्वती थोड़ा अन्यमनस्क-सी हो गई और नोना की डाल ऊपर उठ गयी, साथ-ही-साथ देवदास नोना की डाल से नीचे गिर पड़ा। डाल अधिक ऊंची नही थी, इससे ज्यादा चोट नही आयी, किंतु शरीर के अनेक स्थान छिल गए। नीचे आकर क्रुद्ध देवदास ने एक सूखी कइन लेकर पार्वती की पीठ के ऊपर, गाल के ऊपर और जहां-तहां जोर से मारकर कहा-'जा, दूर हो जा।'

पहले पार्वती स्वयं ही लज्जित हुई थी, पर जब छड़ी-पर-छड़ी क्रम से पड़ने लगी, तो उसने क्रोध और अभिमान से दोनो आंखें अग्नि की भांति लाल-लाल कर रोते हुए कहा-'मै अभी बड़े चाचा के पास जाती हूं।'

देवदास ने क्रोधित होकर और एक बार मारकर कहा-'जा, अभी जाकर कह दे, मेरा कुछ नही होगा।'

पार्वती चली गई। जब वह दूर चली गई–तब देवदास ने पुकारा–'पत्तो।' पार्वती ने सुनी–अनसुनी कर दी और भी जल्दी–जल्दी चलने लगी। देवदास ने फिर बुलाया–'ओ पत्तो, जरा सुन जा!'

पार्वती ने जवाब नही दिया। देवदास ने विरक्त होकर थोड़ा चिल्लाकर आप–ही–आप कहा–जाकर मरने दो।

पार्वती चली गई। देवदास ने जैसे–तैसे करके दो–एक बंसी काट ली। उसका मन खराब हे गया था। रोते–रोते पार्वती मकान पर लौट आई। उसके गाल के ऊपर छड़ी के नीले दाग की सांट उभर आई थी, पहले ही उस पर दादी की नजर पड़ी। वे चिल्ला उठी–'बार बे बाप! किसने ऐसा मारा है, पत्तो?'

आंख मीचते–मीचते पार्वती ने कहा–पंडितजी ने।'

दादी ने उसे लेकर अत्यंत क्रुद्ध होकर कहा–'चल तो, एक बार नारायण के पास चले, वह कैसा पंडित है। हाय–हाय! बच्ची के एकदम मार डाला!'

पार्वती ने पितामही के गले से लिपटकर कहा–चल!'

मुखोपाध्यायजी के निकट आकर पितामही ने पंडितजी के मृत पुरखा–पुरखनियो को अनेको प्रकार से भला–बुरा कहकर तथा उनकी चौदह पीढ़ियो के नरक मे डालकर, अंत मे स्वयं गोविंद को बहुत तरह से गाली–गुफते देकर कहा–'नारायण, देखो तो उसकी हिम्मत को! शूद्र होकर ब्राह्मण की कन्या के शरीर पर हाथ उठाता है! कैसा मारा है, एक बार देखो! यह कहकर वृद्धा गाल के ऊपर पड़े हुए नीले दाग को अत्यंत वेदना के साथ दिखाने लगी।'

नारायण बाबू ने तब पार्वती से पूछा–'किसने मारा है, पत्तो?'

पार्वती चुप रही। तब दादी ने और एक बार चिल्लाकर कहा–'और कौन मारेगा सिवा उस गंवार पंडित के!'

'क्यो मारा है?'

पार्वती ने इस बार भी कुछ नही कहा। मुखोपाध्याय महाशय ने समझा कि किसी कुसूर पर मारा है, लेकिन इस तरह मारना उचित नही। प्रकट मे भी यही कहा। पार्वती ने पीठ खोलकर कहा–'यहां भी मारा है।'

पीठ के दाग और भी स्पष्ट तथा गहरे थे। इस पर वे दोनो ही बड़े क्रोधित हुए। 'पंडितजी के बुलाकर कैफियत तलब की जाएगी।' मुखोपाध्यायजी ने यही अपनी राय जाहिर की। इस प्रकार स्थिर हुआ कि ऐसे पंडित के निकट लड़के–लड़कियो को भेजना उचित नही।

यह निश्चित सुनकर पार्वती प्रसन्नतापूर्वक दादी की गोद मे चढ़कर घर लौट आयी। घर पहुंचे पर पार्वती माता की जिरह मे पड़ी। उन्होने बैठकर पूछा–'क्यो मारा है?'

पार्वती ने कहा–'झूठ–ही–मूठ मारा है।'

माता ने कन्या का कान खूब जोर से मलकर कहा–'झूठ–मूठ कोई मार सकता है?'

उसी समय दालान से सास जा रही थी, उन्होने घर की चौखट के पास आकर कहा–'बहू, मां होकर भी तुम झूठ–मूठ मार सकती हो और वह निगोड़ा नही मार सकता?' बहू ने कहा–'झूठ–मूठ कभी नही मारा है। बड़ी भली लड़की है, जो कुछ नही किया और उन्होने मारा!'

सास ने विरक्त होकर कहा–'अच्छा यही सही, पर इसे मै पाठशाला नही जाने दूंगी।'

'लिखना-पढ़ना नही सीखेगी?'

'क्या होगा सीखकर बहू? एक-आध चिट्ठी-पत्री लिख लेना, रामायण-महाभारत पढ़ लेना ही काफी है। फिर तुम्हारी पत्तो को न जजी करनी है और न वकील होना है।'

अंत मे बहू चुप हो गई। उस देवदास ने बहुत डरते-डरते घर मे प्रवेश किया। पार्वती ने आदि अंत तक सारी घटना अवश्य ही कह दी होगी, इसमे उसे कोई संदेह नही था। परंतु घर आने पर उसका लेशमात्र भी आभास न मिला, वरन मां से सुना कि आज गोविंद पंडितजी ने पार्वती के खूब मारा है, इसी से अब वह भी पाठशाला नही जाएगी। इस आनंद की अधिकता से वह भली-भांति भोजन भी नही कर सका। किसी तरह झटपट खा-पीकर दौड़ा हुआ पार्वती के पास आया और हांफते-हांफते कहा-'तुम अब पाठशाला नही जाओगी?'

'नही।'

'कैसे?'

'मैने कहा कि पंडितजी मारते है।

देवदास एक बार हंसा, उसकी पीठ ठोककर कहा कि उसके समान बुद्धिमती इस पृथ्वी पर दूसरी नही है। फिर उसने धीरे-धीरे पार्वती के गाल पर पड़े हुए नीले दाग ही सयत्न परीक्षा कर, नि:श्वास फेककर कहा-'अहा!'

पार्वती ने थोड़ा हंसकर उसके मुख की ओर देखकर कहा-'क्यो?'

'बड़ी चोट लगी न पत्तो?'

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा-'हूं!'

'तुम क्यो ऐसा करती हो? इसी से तो क्रोध आता है और इसीलिए मारता भी हूं।'

पार्वत की आंखो मे जल भर आया। मन मे आया कि पूछे कि क्या करे परंतु पूछ नही सकी।

देवदास ने उसके माथे पर हाथ रखकर कहा-'अब ऐसा कभी नही करना-अच्छा!'

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा-'नही करूंगी।'

देवदास ने और बार पीठ ठोककर कहा-'अच्छा, तब मै कभी तुमको नही मारूंगा।'

दिन पर दिन बीतता जाता था-और इन दोनो बालक-बालिकाओ के आनंद की सीमा नही थी। सारे दिन वे इधर-उधर घूमा करते थे, संध्या के समय लौटने पर डांट-डपट के अतिरिक्त मार-पीट भी खूब पड़ती थी। फिर सुबह होते ही घर से निकल भागते थे और रात को आने पर मारपीट और घुड़की सहते थे। रात मे सुख की नीद सोते; फिर सवेरा होते ही भागकर खेल-कूद मे जा लगते। इसका दूसरा कोई संगी-साथी न था, जरूरत भी नही थी। गांव मे उपद्रव और अत्याचार करने के लिए यही दोनो काफी थे। उस दिन आंखे लाल किए सारे तालाब को मथकर पंद्रह मछलियां पकड़ी और योग्यतानुसार आपस मे हिस्सा लगाकर घर लौटे। पार्वती की माता ने कन्या को मार-पीठकर घर मे बंद कर दिया। देवदास के विषय मे ठीक नही जानता; क्योकि वह इन सब बातो को किसी प्रकार प्रकट नही करता। जब पार्वती रो रही थी, उस समय दो या ढाई बजे थे। देवदास ने आकर एक बार खिड़की के नीचे से बहुत मीठे स्वर से बुलाया-'पत्तो, ओ पत्तो! पार्वती ने संभवत: सुना, किंतु क्रोधवश उत्तर नही दिया। तब उसने एक

निकटवर्ती चम्पा के पेड़ पर बैठकर सारा दिन बीता दिया। संध्या के समय धर्मदास समझा-बुझाकर बड़े परिश्रम से उसे उतारकर घर पर लाया।'

यह केवल उस दिन हुआ। दूसरे दिन पार्वती भोर से ही देव दादा के लिए बेचैन हो रही थी, लेकिन देवदास नही आया। वह पिता के साथ पास के गांव मे निमंत्रण मे गया हुआ था। देवदास जब नही आया तो पार्वती उदासीन मन से घर से बाहर निकली। कल ताल मे उतरने के समय देवदास ने पार्वती को तन रुपये रखने के लिए दिये थे कि कही खो न जाएं। उन तीनो रुपयो को उसने आंचल की छोर मे बांध लिया था। उसने आंचल को हिरा-फिराकर और स्वयं इधर-उधर घूमकर कई क्षण बिताए। कोई संगी-साथी नही मिला, क्योकि उस समय प्रात:काल की पाठशाला थी। पार्वती तब दूसरे गांव मे गई। वहां मनोरमा का मकान था। मनोरमा पाठशाला मे पढ़ती थी, उसकी उम्र कुछ बड़ी थी। परंतु वह पार्वती की सखी थी। बहुत दिनो से आपस मे भेट नही हुई थी। आज पार्वती ने अवकाश पा उसके घर पर जाकर पुकारा-'मनो घर मे है?'

'पत्तो?'

'हां-मनो कहां है बुआ?'

'वह पाठशाला गई है-तुम नही जाती?'

'मै पाठशाला नही जाती, देव दादा भी नही जाते।'

मनोरमा की बुआ ने हंसकर कहा-'तब तो अच्छा है, तुम भी पाठशाला नही जाती और देव दादा भी नही।'

'नही, हम लोग कोई नही जाते।'

'अच्छी बात है, पर मनो पाठशाला गई है।'

बुआ ने बैठने के लिए कहा, पर वह बैठी नही, लौट आयी। रास्ते मे रसिकपाल की दुकान के पास तीन वैष्णवी तिलक-मुदा लगाये, हाथ मे खंजड़ी लिये भिक्षा मांग रही थी। पार्वती ने उन्हे बुलाकर कहा - 'ओ वैष्णवी तुम लोग गाना जानती हो?'

एक ने फिरकर देखा और कहा - 'जानती हूं, क्या है बेटी?'

'तब गाओ!' तीनो खड़ी हो गयी। एक ने कहा - 'ऐसे कैसे गाना होगा, भिक्षा देनी होगी। चलो तुम्हारे घर पर चलकर गायेगे।'

'नही, यही गाओ।'

'पैसा देना होगा!'

पार्वती ने अपना आंचल दिखाकर कहा - 'पैसा नही रुपया है।'

आंचल मे बंधा रुपया देखकर वे लोग दुकान से कुछ दूर पर जाकर बैठी। फिर खंजड़ी बजाकर, गले से गला मिलाकर तीनो ने गाना गाया। क्या गाया, उसका अर्थ था, यह सब पार्वती ने कुछ भी नही समझा। इच्छा करने पर भी वह नही समझ सकती थी। लेकिन उसी क्षण उसका मन देव दादा के पास खिंच गया।

गाना समाप्त करके एक वैष्णवी ने कहा - 'क्या अब भिक्षा दोगी, बेटी?'

पार्वती ने आंचल की गांठ खोलकर उन लोगो को तीनो रुपये दे दिये। तीनो आवक् होकर उसके

मुख की ओर कुछ क्षण देखती रही।

एक ने कहा – ‘किसका रुपया है, बेटी?’

‘देव दादा का।’

‘वे तुम्हे मारेगे नही?’

पार्वती ने थोड़ा सोचकर कहा – ‘नही।’

एक ने कहा – ‘जीती रहो।’

पार्वती ने हंसकर कहा – ‘तुम तीनो जने का ठीक–ठीक हिस्सा लग गया न?’

तीनो ने सिर हिलाकर कहा – ‘हां, मिल गया। राधारानी तुम्हारा भला करें।’ यह कहकर उन लोगो ने आंतरिक कामना की कि इस दानशीलता छोटी कन्या को कोई दंड–भोग न करना पड़े। पार्वती उस दिन जल्दी ही मकान लौटी। दूसरे दिन प्रात:काल देवदास से उसकी भेट हुई। उसके हाथ मे एक परेता था, पर गुड्डी नही थी, वह खरीदनी होगी। पार्वती से कहा – ‘पत्तो रुपया दो!’

पार्वती ने सिर झुकाकर कहा – ‘रुपया नही है।’

‘क्या हुआ?’

‘वैष्णवी को दे दिया, उन लोगो ने गाना गया था।’

‘सब दे दिया?’

‘हां। सब तीन ही रुपये तो थे!’

‘दुर पगली, क्या सब दे देना था?’

‘वाह! वे लोग जो तीन जनी थी, तीन रुपये न देती तो तीनो का कैसे ठीक हिस्सा लगता?’

देवदास ने गंभीर होकर कहा – ‘मै होता तो दो रुपये से ज्यादा न देता।’ यह कहकर उसने परेता की मुठिया से मिट्टी के ऊपर चिन्हाटी खीचते–खीचते कहा – ‘ऐसा होने से उनमे प्रत्येक को दस आना, तेरह गंडा एक कौड़ी का हिस्सा पड़ता।’

पार्वती ने इबारती तक सवाल सीखे है। पार्वती की इस बात से प्रसन्न होकर कहा – ‘यह ठीक है।’

पार्वती ने देवदास का हाथ पकड़कर कहा – मैने सोचा था कि तुम मुझे मारोगे देव दादा!’

देवदास ने विस्मित होकर कहा – ‘मारूंगा क्यो?’

‘वैष्णवी लोगो ने कहा था कि तुम मारोगे।’

यह बात सुनकर देवदास ने खूब प्रसन्न हो पार्वती के कंधे पर भार देकर कहा – ‘दुर! कभी अपराध करने से क्या मे मारता हूं?’

देवदास ने संभवत: मन मे सोचा था कि पार्वती का यह काम उसके पीनल कोड के अंतर्गत नही है, क्योकि तीन रुपये तीन आदमियो के बीच ठीक–ठीक तकसीम कर दिये। विशेषत: जिन वैष्णवी लोगो ने पाठशाला मे इबारती सवाल नही पढ़ा है, उन्हे तीन रुपये के बदले दो रुपये देना उनके प्रति भारी अत्याचार करना था। फिर वह पार्वती का हाथ पकड़कर छोटे बाजार की ओर गुड्डी खरीदने के लिए चला गया। परेता को वही एक झाड़ी मे छिपा दिया।

इसी तरह एक वर्ष कट गया, किंतु अब और नही कटना चाहता। देवदास की माता ने शोर–गुल मचाया। स्वामी को बुलाकर कहा ‘कि देवा तो एकदम मूर्ख हरवाहा हो गया, इसका कोई बहुत जल्द उपाय

करो।'

उन्होने सोचकर कहा – 'देवा को कलकत्ता जाने दो। नगेन्द्र के घर रहकर वह खूब अच्छी तरह लिख–पढ़ सकेगा।'

नगेन्द्र बाबू संबंध मे देवदास के मामा है। यह बात सबने सुनी। पार्वती यह सुनकर बहुत चिंतित हुई। देवदास को अकेले मे पाकर उसका हाथ पकड़कर हिलाते–हिलाते पूछा – 'देव दादा, क्या अब तुम कलकत्ता जाओगे?'

'किसने कहा?'

'बड़े चाचा कहते थे।'

'नही, मै किसी तरह नही जाऊंगा।'

'और अगर जबरदस्ती भेजेगे?'

'जबरदस्ती!'

इस समय देवदास ने अपने मुख का भाव ऐसा बनाया, जिससे पार्वती अच्छी तरह समझ गई कि उससे इस पृथ्वी–भर मे कोई जबरदस्ती से काम नही करा सकता। यही तो वह चाहती भी थी। अस्तु, बड़े आनंद के साथ एक बार और उसका हाथ पकड़कर इधर–उधर हिलाया और उसके मुंह की ओर देखकर कहा – 'देखो कभी मत जाना, देव दादा!'

'कभी नही।'

किन्तु उसकी यह प्रतिज्ञा नही रही। उसके माता–पिता ने उसे डांट डपटकर और मार–पीटकर धर्मदास के साथ कलकत्ता भेज दिया। जाने के दिन देवदास के हृदय मे बड़ा दुख हुआ। नये स्थान मे जाने के लिए उसे कुछ भी कौतुहल और आनंद नही हुआ। पार्वती उस दिन उसे किसी तरह छोड़ना नही चाहती थी। कितना ही रोई, परंतु इसे कौन सुनता है। पहले अभिमान मे कुछ देर तक देवदास से बातचीत नही की; लेकिन अंत मे जब देवदास ने बुलाकर उससे कहा – 'पत्तो, मै जल्दी ही लौट आऊंगा; अगर न आने देगे तो भाग आऊंगा।' तब पार्वती ने संभलकर अपने हृदय की अनेक आंतरिक बाते देवदास को कह सुनायी। इसके बाद घोड़ा–गाड़ी पर चढ़कर, पौर्टमॉन्टो लेकर, माता का आशीर्वाद और आंखो का जल बिंदु कपाल पर टीके की भांति लगाकर वह चला गया उस समय पार्वती को बहुत कष्ट हुआ; आंखो से कितनी ही जल धराएं गालो पर बहकर नीचे गिरी। उसका हृदय अभिमान से फटने लगा। पहले कितने ही दिन उसके ऐसे कटे। इसके बाद एक दिन प्रातःकाल उठकर उसने सोचा कि सारे दिन उसके पास कोई काम करने को नही है, इसके पहले पाठशाला छोड़ने के बाद प्रातःकाल से संध्या तक झूठ–मूठ ही खेल–कूद मे कट जाता था; कितने ही काम उसे करने को रहते थे, किंतु समय नही मिलता था। पर अब सारे दिन यो ही पड़ी रहती है, एक काम भी खोजने पर नही मिलता। प्रातःकाल उठकर किसी दिन चिट्ठी लिखने बैठी–दस बज गए। माता झुंझला उठी, पितामही ने सुनकर कहा – 'उसे लिखने दो। सुबह इधर–उधर न दौड़कर लिखते–पढ़ते रहना अच्छा है।'

जिस दिन देवदास का पत्र आता, वह पार्वती के लिए बड़े सुख का दिन होता है। सीढ़ी की देहली ऊपर बैठकर वही कागज हाथ मे लेकर सारे दिन पढ़ती रहती है। इसी भांति दो महीने बीत गये। पत्र लिखना अथवा पाना अब उतना जल्दी–जल्दी नही होता, उत्साह भी कुछ कम हो गया।

एक दिन प्रातःकाल पार्वती ने माता से कहा – 'मां, मै फिर पाठशाला जाऊंगी।'

'क्यो ?'

पार्वती पहले कुछ विस्मित हुई, फिर सिर हिलाकर बोली – 'मै जरूर जाऊंगी।'

'तो जा, पाठशाला जाने से मैने कभी तुझे रोका तो नही है।'

उसी दिन दोपहर मे पार्वती ने दासी का हाथ पकड़कर, बहुत दिन से छोड़ी हुई स्लेट और पेसिल को ढूंढकर बाहर निकाला और उसी पुराने स्थान पर शांत एवं गंभीर भाव से जा बैठी।

दासी ने कहा – 'गुरु जी, पत्तो को अब मारना नही, यह अपनी इच्छा से पढ़ने आई है, जब तक इसकी इच्छा होगी पढ़ेगी और जब इच्छा न होगी, घर चली जायेगी।'

गुरुजी ने मन–ही–मन कहा, तथास्तु! प्रकट मे कहा – 'यही होगा।'

एक बार ऐसी इच्छा हुई कि पूछे कि पार्वती कलकत्ता क्यो नही भेजी गयी? किंतु यह बात नही पूछी। पार्वती ने देखा कि उसी स्थान पर और उसी बेच पर छात्र–सरदार भूलो बैठा है। उसे देखकर पहले एक बार हंसी आयी, लेकिन दूसरे ही क्षण आंखो मे आंसू डबडबा आये। फिर उसे भूलो के ऊपर क्रोध आया। मन मे सोचा कि केवल उसी ने देवदास को घर से बाहर किया। इस तरह से बहुत दिन बीत गए।

बहुत दिनो के बाद देवदास मकान पर लौटा। जल्दी से पार्वती के पास आया, नाना प्रकार ही बातचीत हुईं। उसे अधिक बातचीत नही करनी थी – थी भी तो वह कर नही सकी। परंतु देवदास ने बहुत सी बाते कहीं। प्रायः सभी कलकत्ता की बाते थी। गर्मी की छुट्टी बीत गई, देवदास फिर कलकत्ता गया। इस बार भी रोना धोना हुआ, परंतु पिछली बार–सी उसमे वह गंभीरता नही थी। इस तरह चार वर्ष बीत गये। इन कई वर्षों मे देवदास के स्वभाव मे इतना परिवर्तन हुआ, जिसे देखकर पार्वती ने कई बार छिपे–छिपे आंसू गिराये। इसके पहले देवदास मे जो ग्रामीण दोष थे, वे शहर मे रहने से एकबारगी दूर हो गये। अब उसे डासन शू , अच्छा सा कोट, पैट, टाई, छड़ी, सोने की चेन और घड़ी, गोल्डन फ्रेम का चश्मा आदि के न होने से बड़ी लज्जा लगती है। गांव की नदी के तीर पर घूमना अब उसे अच्छा नही लगता और बदले मे हाथ मे बंदूक लेकर शिकार खेलने मे विशेष आनंद मिलता है। छोटी मछली पकड़ने के बजाय बड़ी मछलियो के फंसाने की इच्छा है। यही क्यो – सामाजिक बात, राजनीतिक चर्चा, सभा–समिति, क्रिकेट, फुटबाल आदि की आलोचनाएं होती है। हाय रे! कहां वह पार्वती वह उन लोगो का ताल – सोनापुर गांव! बाल्यकाल की दो–एक सुख की बातो का भी स्मरण न आता हो – ऐसा नही; किंतु अनेक प्रकार के कार्यभार के कारण वे बाते बहुत देर तक हृदय मे जगह नही पाती। फिर गर्मी की छुट्टी हुई। पिछले वर्ष की गर्मी की छुट्टी मे देवदास विदेश घूमने चला गया था, घर नही गया था। इस बार माता–पिता के बहुत आग्रह करने पर और अनेको पत्र लिखने पर अपनी इच्छा न रहते हुए भी देवदास बिस्तर बांधकर सोनापुर गांव के लिए हावड़ा स्टेशन पर आया। जिस दिन वह घर आया उस दिन उसका शरीर कुछ अस्वस्थ था, तभी से बाहर नही निकला। दूसरे दिन पार्वती के घर पर आकर बुलाया – 'चाची!'

पार्वती की माता ने आदर के साथ कहा – 'आओ बेटा यहां आकर बैठो।'

चाची के साथ कुछ क्षण बातचीत करने पर पूछा – 'पत्तो कहां है, चाची?'

'वही ऊपर वाली कोठरी मे है।'

देवदास ने ऊपर जाकर देखा कि पार्वती संझाबती दे रही है। बुलाया – 'पत्तो!'

पहले पार्वती चमत्कृत हो उठी, फिर प्रणाम करके बगल मे हटाकर खड़ी हो गई।

'यह क्या होता है, पत्तो?'

इस बात के कहने की आवश्यकता नही थी, इसी से पार्वती चुप रही। फिर देवदास ने लजाकर कहा – 'जाता हूं, संध्या हो गयी, शरीर अच्छा नही है।'

देवदास चला गया।

पार्वती ने इस साल तेरहवे वर्ष मे पांव रखा है – दादी यह कहती है। इसी उम्र में शारीरिक सौंदर्य अकस्मात मानो कही से आकर किशोरी से सर्वांग को छा लेता है। आत्मीय स्वजन सहसा एक दिन चमत्कृत होकर देखते है कि उनकी छोटी कन्या अब बड़ी हो गई है। उसके विवाह की तब छटपटी पड़ती है। चक्रवर्ती महाशय के घर मे आज कई दिनो से इन्ही सब बातो की चर्चा हो रही है। माता इसके लिए बड़ी चिंतित हो रही थी, बात–बात मे वह पति को सुनाकर कहती कि अब पत्तो को अधिक दिन तक अविवाहित रखना उचित नही है। वे लोग बड़े आदमी नही है; उन लोगो को एकमात्र यही भरोसा है कि कन्या अनुपम सुंदरी है। संसार मे यदि रूप की प्रतिष्ठा है तो पार्वती के लिए अधिक चिंता न करनी पड़ेगी और भी एक बात हे, जिसे यही पर कह देना उचित है। चक्रवर्ती परिवार को कन्या के विवाह के लिए आज तक कोई विशेष चिंता नही करनी पड़ी है; हां पुत्र के विवाह के लिए अवश्य करनी पड़ती है। कन्या के विवाह मे दहेज ग्रहण करते थे, पुत्र के विवाह मे दहेज देकर कन्या घर ले आते थे। किंतु नीलकंठ स्वयं इस प्रथा को बहुत घृणा से देखते थे। उनकी यह तनिक भी इच्छा नही थी कि कन्या को बेचकर धनोपार्जन करे। पार्वती की मां इस बात को जानती थी; इसी से कन्या के विवाह हो। उसे यह स्वप्न मे भी विश्वास नही होता था कि मेरी यह आशा दुराशा मात्र है। वह सोचती थी कि देवदास से अनुरोध करने पर कोई रास्ता निकल आएगा। संभवत: यही सोचकर नीलकंठ की माता ने देवदास की मां से इस प्रकार यह चर्चा छेड़ी– 'आहा! बहू, देवदास और मेरी पत्तो मे जैसा स्नेह है, वह ढूंढे से भी कही नही मिल सकता।'

देवदास की मां ने कहा – 'भला ऐसा क्यो न होगा चाची, वे दोनो भाई–बहिन की तरह पलकर इतने बड़े हुए है।'

'हां बहू, यह मै भी समझती हूं। देखो न, जब देवदास कलकत्ता गया था तो पत्तो सिर्फ आठ बरस की थी, पर सी अवस्था मे वह उसकी चिंता करते–करते सूखकर कांटा हो गयी। देवदास की यदि कभी एक भी चिट्ठी आती थी, तो वह उसे बड़े चाव से दिन–रात बारम्बार पढ़ा करती थी। यह हम लोग अच्छी तरह जानती है।'

देवदास की मां ने मन–ही–मन सब–कुछ समझ लिया था। थोड़ी मुस्करायी। उस मुस्कराहट मे कितने छुपे हुए भाव गुंथे थे, वह मै नही कह सकता, किन्तु वेदना बहुत थी। वे सभी बाते जानती थी, साथ ही पार्वती को प्यार भी करती थी। किंतु वह कन्याओ के बेचने और खरीदने वाले घर की लड़की थी, फिर घर के पास ही कुटुंब था। अतएव ऐसे के साथ विवाह संबंध होना ठीक नही था। उसने कहा –

'चाची, वे इतनी छोटी उम्र मे लड़के का ब्याह नही करेगे; खासकर पढ़ने लिखने के दिनो मे। इसी से वे मुझसे कहते थे कि बड़े लड़के द्विजदास का बचपन मे ब्याह कर देने से बड़ी हानि हुई। लिखना-पढ़ना एकबारगी छूट गया।'

पार्वती की दादी का मुख्य यह सुनकर बिलकुल उतर गया। लेकिन फिर भी कहा-'यह तो मै भी जानती हूं बहू, लेकिन क्या तुम यह नही जानती कि पत्तो अब बड़ी हुई! उसके देह की गठन भी लम्बी है, इसी से यदि नारायण इस बात को...।'

देवदास की मां ने बात काटकर कहा-'नही चाची, मै यह बात उनसे नही कह सकूंगी। तुम्ही कहो मै किस मुंह से इस वक्त उनसे यह बात कहूं?'

यह बात यही समाप्त हो गयी। परन्तु स्त्रियो के पेट मे भला कभी बात पचती है! जब स्वामी भोजन करने के लिए बैठे, तो देवदास की मां ने कहा-'पार्वती की दादी उसके ब्याह की बातचीत करती थी।'

स्वामी ने मुंह ऊपर उठाकर कहा-'हां, अब पार्वती भी इस योग्य हो गयी है, अब उसका विवाह कर देना ही उचित है।'

'यही तो आज वह कह रही थी कि अगर देवदास ने साथ उसका...।'

स्वामी ने भौ चढ़ाकर कहा-'तो तुमने क्या कहा?'

'मै क्या कहती? दोनो मे बड़ा स्नेह है; पर इसी से क्या कन्या के बेचने-खरीदने वाले चक्रवर्ती घराने की लड़की लाऊंगी? फिर घर के पास ही घर ठहरा। छिः! छिः!

स्वामी ने सन्तुष्ट होकर कहा-'ठीक है, क्या घराने का नाम हंसाऊंगा? इन सब बातो पर कान नही देना।'

गृहिणी ने एक सूखी हंसी हंसकर कहा-'नही, मै इन सब बातो पर कान नही देती। पर तुम भी यह मत भूल जाना।'

स्वामी ने गम्भीर मुख से बात का कौर उठाते हुए कहा-'ऐसा होता तो इतनी बड़ी जमीदारी कभी की फुंक गयी होती।'

जब वैवाहिक प्रस्ताव के अस्वीकृति की बात नीलकंठ के कानो मे पहुंची, तो उन्होने मां को बुलाकर बड़े तिरस्कार के साथ कहा-'मां, तुम क्यो ऐसी बात कहने गयी?'

मां चुप रही। नीलकंठ ने कहा-'कन्या के ब्याह के लिए हम लोग किसी के पांव नहीं पड़ते, बल्कि कितने ही लोग हम लोगो के पांव पड़ते है। मेरी लड़की कुरूपा नही है! देखो, तुम लोगो से कहे देता हूं कि एक हफ्ते के भीतर ही सम्बन्ध ठीक कर लूंगा। ब्याह के लिए क्या सोच करना!'

किन्तु जिसके लिए पिता ने इतनी बड़ी बात कही थी; उससे उसके सिर पर बिजली-सी गिरी। लड़कपन ही से यही धारणा थी कि देवदास पर एकमात्र उसी का अधिकार है। अधिकार किसी ने उसके हाथ मे सौपा हो, यह बात नही थी। पहले स्वयं भी इसे अच्छी तरह समझ नही सकी, अनजाने मे ही उसके अधीर मन से दिनो-दिन इस अधिकार को अति नीरवता एवं दृढ़ता के साथ अपनाकर प्रतिष्ठित किया था। अब तक यद्यपि उसका बाहरी रूप आंखो से वह नही देख सकी, तथापि आज उसको बेहाथ होते देखकर उसके सारे हृदय मे एक भारी तूफान-सा उठने लगा।

किन्तु देवरदास के सम्बन्ध मे यह बात कहना ठीक नही। लड़कपन में पार्वती के ऊपर जो दखल

पाया था, उसका उसने पूर्ण रूप से उपभोग किया। परन्तु कलकत्ता जाकर काम-काज की भीड़ और अन्याय और आमोद-प्रमोद मे फंसकर वह पार्वती को बहुत-कुछ भूल गया। लेकिन वह यह नहीं जानता कि पार्वती अपने उसी अपरिवर्तित ग्राम्य-जीवन मे निश-दिन केवल उसी का ध्यान किया करती है। केवल इतना ही नही, उसने यह स्वप्न मे भी नही सोचा था कि बाल्य-काल से जिसे हर तरह से अपना जाना, एवं सब सुख-दुख मे जिसका बराबर साथ दिया, यौवन की पहली सीढ़ी पर पांव रखते ही उसे इस तरह फिसलना पड़ेगा। किन्तु उस समय विवाह की बात कौन सोचता था? कौन जानता था कि किशोर-बन्धन विवाह-बन्धन के बिना किसी तरह चिर-स्थायी नहीं रह सकता। 'इसीलिए विवाह नही हो सकता' यह सम्वाद उसकी सारी आशा-पिपासा को छिन्न-भिन्न करने के लिए उसके हृदय से खीचातानी करने लगा। देवदास का प्रात:काल का समय पढ़ने-लिखने मे बीतता है। दोपहर मे बड़ी गरमी पड़ती है, घर से बाहर निकलना कठिन है, केवल सांयकाल में यदि इच्छा होती तो व बाहर हवा खाने के लिए जाया करता है। इस समय किसी दिन वह धोती-कुरता और एक अच्छा-सा जूता पहनकर, हाथ में छड़ी लेकर टहलने के लिए निकलता। जाते समय वह चक्रवर्ती के मकान के नीचे से होकर जाता था। पार्वती ऊपर बंगले से आंसू पोछती हुई उसे देखती थी। कितनी ही बाते उसके मन मे उठती थी। मन मे उठता था कि दोनो बड़े हुए। बहुत दिन परदेस मे रहने के कारण दोनो एक-दूसरे से बड़ी लज्जा करते है। देवदास उस दिन इसी तरह चला गया, लज्जा के कारण इच्छा रहते हुए भी वह कोई बात नही कर सका। यह बात पार्वती भी समझने से नही चूकी।

देवदास भी प्राय: इसी भांति सोचता था। बीच-बीच मे उसके साथ बातचीत करने और देखने के लिए इच्छा भी होती थी, किन्तु साथ ही यह भी ख्याल होता था कि क्या यह अच्छा दीखेगा? यहां कलकत्ता का वह कोलाहल नही है, वह आमोद-प्रमोद, थियेटर और गाना-बजाना नही है। इसीलिए उसे केवल उसके बचपन की बाते याद आती है। मन में प्रश्न उठता था कि क्या यह पार्वती वही पार्वती है? पार्वती मन में सोचती कि क्या यह देवदास बाबू वही देवदास है? देवदास अब प्राय: चक्रवर्ती के मकान की ओर नही जाता। किसी दिन वह आंगन में खड़ा होकर बुलाता-'छोटी चाची, क्या करती हो?'

छोटी चाची कहती है-'यहां आकर बैठो।'

देवदास कहता-'नही, रहने दो चाची, मै थोड़ा घूमने जा रहा हूँ।'

पार्वती किसी दिन ऊपर रहती और किसी दिन देवदास के सामने पड़ जाती थी। वह जब छोटी चाची के साथ बातचीत करने लगता, तो पार्वती धीरे से खिसक जाती थी। सायंकाल के बाद देवदास के घर मे दीया जलता था। ग्रीष्म काल की खुली हुई खिड़की से पार्वती बहुत देर तक उसी ओर देखा करती थी, किन्तु सिवा उस दीप-प्रकाश के और कुछ नही देख पाती थी। पार्वती सदा से आत्माभिमानी है। वह जो यन्त्रणा सहन कर रही है, उसके तिल-मात्र की भी किसी को थाह न देने की उसकी आन्तरिक चेष्टा रहती है। और फिर किसी से कहने-सुनने मे लाभ ही क्या? सहानुभूति सहन नही हो सकती; और तिरस्कार लांछना! इससे तो मर जाना ही अच्छा है। पिछले वर्ष मनोरमा का विवाह हुआ, किन्तु वह ससुराल नही गयी। इसी से बीच-बीच मे वह पार्वती से मिलने आ जाया करती थी। पहले दोनो सखियो मे ये सभी बाते घुल-घुलकर होती थी, पर अब वह बात नही है। पार्वती उसका साथ नही

देती। वह या तो ऐसी बातो के छिड़ने पर चुप ही रहती है या टालमटोल कर जाती है।

पार्वती के पिता कल रात घर लौटे। इधर कई दिनो से वह वर ढूंढने गये थे। अब विवाह की सब बातचीत पक्की करके घर लौटे है। प्राय: बीस-पच्चीस कोस की दूरी पर बर्दवान जिला के हाथीपोता गांव के जमीदार के साथ विवाह का होना स्थिर कर आये है। उसकी आर्थिक दशा अच्छी है, उम्र चालीस वर्ष से कुछ कम ही है। गत वर्ष पहली स्त्री का स्वर्गवास हुआ है, इसीलिए दूसरा विवाह कर रहे है। इस समाचार से कुटुम्बियो मे किसी को आनन्द नही हुआ, वरन् दुख ही पहुंचा। फिर भी भुवन चौधरी से सब मिलाकर दो-तीन हजार रुपये की प्राप्ति थी, इसी से सब स्त्रियां चुप हो रही।

एक दिन दोपहर के समय जब देवदास चौके मे भोजन करने को बैठा, तो मां ने पास बैठकर कहा- 'पत्तो का विवाह है।'

देवदास ने मुंह उठाकर पूछा-कब?

'इसी महीन मे। कल वर खुद आकर कन्या को देख गया है।'

देवदास ने कुछ विस्मित होकर कहा-'क्या, मै तो कुछ नही जानता मां!'

'तुम कैसे जानोगे? वर दुहेजू है-अवस्था कुछ अधिक है, पर घर का धनी है। पत्तो खाने-पीने से सुखी रहेगी।'

देवदास गर्दन नीची कर भोजन करने लगा। उसकी मां ने फिर कहना आरम्भ किया-'उन लोगो की इच्छा थी कि इसी घर मे ब्याह हो।'

देवदास ने मुंह उठाकर कहा-'फिर?' मां ने कहा-'छि:! ऐसा कभी हो सकता है? एक तो वे लोग कन्या बेचने-खरीदने वाले, दूसरे, घर के पड़ोस मे; फिर ऐसे छोटे घराने मे! छि:छि:!' यह कहकर मां ने ओठ सिकोड़ा। देवदास ने भी इसे देखा।

कुछ देर चुप रहने के बाद मां ने फिर कहा-'तुम्हारे बाबूजी से भी मैने कहा था।'

देवदास ने पूछा-'बाबूजी ने क्या कहा?'

'और क्या कहेगे? यही कहा कि क्या इतने बड़े वंश का सिर नीचा करेगे।'

देवदास ने फिर कोई बात नही पूछी। इसी दिन दोपहर मे मनोरमा और पार्वती की बातचीत हुई। पार्वती की आंखो में जल देखकर मनोरमा की आंखे भी डबडबा आयी। उसने उन्हे पोछकर पूछा-'तब कौन-सा उपाय है बहिन?'

पार्वती ने आंखे पोछकर कहा-'क्या तुमने अपने वर को पसन्द करके विवाह किया था?'

'मेरी बात दूसरी है। मुझे पसन्द भी नही था और नापसन्द भी नहीं है, इसी से मुझे कोई कष्ट भी नही है। पर तुम अपने पांव मे आप कुठार मारती हो, बहिन!'

पार्वती ने जवाब नही दिया, वह मन-ही-मन कुछ सोचने लगी।

मनोरमा कुछ सोचकर हंसी। पूछा-'पत्तो, वर की उम्र क्या है?'

'किसके वर ही?'

'तुम्हारे!'

पार्वती ने हंसकर कहा-'सम्भवत: उन्नीस।'

मनोरमा ने विस्मित होकर कहा-'यह क्या मैने तो सुना है कि चालीस?'

इस बार भी पार्वती ने हंसकर कहा–'मनो बहिन, कितने आदमियो की उम्र उन्नीस–बीस वर्ष की है, मै क्या सबका हिसाब रखती हूँ? मेरे वर ही उम्र उन्नीस–बीस वर्ष की है–यह मैं जानती हूं।'

उसके मुंह की ओर देखकर मनोरमा ने फिर पूछा–'क्या नाम है?'

'सो तो तुम जानती ही हो।'

'मै कैसे जानूंगी?'

'तुम नही जानती? अच्छा लो, मै कह देती हूं।' जरा हंसकर गम्भीरता के साथ पार्वती ने उसके कान के पास अपना मुंह लगाकर कहा–'नही जानती–श्री देवदास!'

मनोरमा पहले तो चमक उठी। फिर थोड़ा धक्का देकर कहा–'इस ठट्ठे से काम नही चलेगा। यह कहो कि नाम क्या है? अगर नही कह सकती हो तो...।

'वही तो मैने कहा।'

मनोरमा ने पूछा–'यदि देवदास नाम है तो फिर इतना रोती क्यो हो?'

पार्वती का चेहरा सहसा उतर गया। कुछ सोचने के बाद उसने कहा–'यह ठीक है; अब मै नही रोऊंगी।'

'पत्तो!'

'क्यो?'

'सब बाते खोलकर क्यों नही कहती बहिन, मै कुछ भी नही समझ पाती हूं।'

पार्वती ने कहा–'जो कुछ कहना था, सभी तो मैने कह दिया।'

'परन्तु कुछ भी तो समझ में नहीं आता।'

'न आता होगा।' यह कहकर पार्वती दूसरी ओर देखने लगी।

मनोरमा ने सोचा कि पार्वती बात छिपाती है, उसकी कुछ कहने की इच्छा नही है। उसे बड़ा गुस्सा आया, दुखित होकर उसने कहा–'पत्तो, जिसमे तुम्हे दुख है, उसमे मुझे भी दुख है। तुम सुखी रहो–यही मेरी आन्तरिक प्रार्थना रहती है। यदि तुम किसी से कोई बात न कहना चाहती हो तो मन कहो, किन्तु इस तरह ठढा करना ठीक नही है।'

पार्वती ने दुखित होकर कहा–'ठट्टा नहीं करती हूं बहिन, जितना मै जानती हूं उतना तुम्हे बता दिया है। मै यही जानती हूं कि मेरे स्वामी का नाम श्री देवदास है। उम्र उन्नीस या बीस वर्ष है, यही बात तुमसे भी कही है।'

'किन्तु मैने तो सुना है कि तुम्हारा सम्बन्ध दूसरे से स्थिर हुआ है?'

'स्थिर और क्या होगा? दादा का तो अब किसी के साथ ब्याह होगा नही होगा तो मेरे साथ न, मैने तो ऐसी कोई खबर नही सुनी है।'

मनोरमा ने जो कुछ सुना था, वह कहने लगी। पार्वती ने बाधा देकर कहा –'यह सब मैने भी सुना है।'

'तब क्या देवदास तुमको...?'

'क्या मुझको?'

मनोरमा ने हंसी दबाकर कहा–'तब जान पड़ता है, स्वयंबर हुआ है! छिपे–छिपे सब बातचीत पक्की

हो गयी है!'

'कच्ची-पक्की यहां कुछ नही हुई है।'

मनोरमा ने व्यथित स्वर मे कहा-'तू क्या कहती है, पत्तो कुछ भी समझ मे नहीं आता।'

पार्वती ने कहा-'तब देवदास से पूछकर मै तुमको समझा दूंगी।'

'क्या पूछोगी? वह तुमसे ब्याह करेगे कि नही?'

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा-'हां, यही।'

मनोरमा ने बड़े आश्चर्य के साथ पूछा-'क्या कहती हो पत्तो, क्या तुम स्वयं पूछोगी?'

'इसमे क्या दोष है, बहिन?'

मनोरमा अवाक् हो गयी, बोली-'क्या कहती हो? स्वयं?'

'हां, स्वयं नहीं तो और मेरी ओर से कौन पूछेगा?'

'लाज नहीं लगेगी?'

'लाज क्यो लगेगी? तुमसे कहने मे क्या मैने लज्जा की है?'

'मै स्त्री हूं-तुम्हारी सखी हूं-किन्तु वे तो पुरुष है, पत्तो!'

इस पर पर्वती हंस पड़ी; कहा-'तुम सखी हो, तुम अपनी हो, किन्तु वे क्या दूसरे है? जो बात तुमसे कह सकती हूं, क्या वही बात उनसे नही कह सकती?'

मनोरमा अवाक् होकर उसके मुंह की ओर देखने लगी।

पार्वती ने हंसकर कहा-'मनो बहिन, तुम झूठ ही माथे मे सिन्दूर पहनती हो। यह भी नही जानती कि किसको स्वामी कहते है। वे मेरे स्वामी न होने पर भी मेरी लज्जा के स्वामी है। उनसे ऐसा करने के पहले ही मै मर न जाऊंगी! इसे छोड़, जो मनुष्य मरने पर उतारू है, क्या वह यह देखता है कि विष कड़वा है या मीठा। उनसे मेरा कोई भी परदा नही है।'

मनोरमा उसके मुंह की ओर देखती रही। कुछ देर बाद पूछा-'उनसे क्या कहोगी? यह कहोगी कि मुझे अपने चरणो मे स्थान दो?'

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा-'ठीक यही कहूंगी, बहिन?'

'और यदि वे स्थान न दे?'

इसके बाद पार्वती कुछ देर तक चुप रही, फिर कहा-'उस समय की बात नहीं जानती।'

घर लौटते समय मनोरमा ने मन-ही-मन सोचा, धन्य साहस, धन्य हृदय-बल! यदि मै मर भी जाऊं तो भी यह बात मुंह से कभी निकाल नहीं सकती।

बात सत्य है। इसी से तो पार्वती ने कहा कि यह माथे में सिन्दूर और हाथ मे चूड़ी पहनना व्यर्थ है।

लगभग एक बजे रात का समय है, तब भी मलिन ज्योत्स्ना आकाश के अंग से लिपटी हुई है। पार्वती चादर से सिर से पैर तक अपने अंग को ढककर दबे पाँच सीढ़ी से नीचे उतर आयी। चारो ओर आंख खोलकर देखा-कोई जाग तो नहीं रहा है। फिर दरवाजा खोलकर नीरव-पथ में आकर खड़ी हुई। गांव का मार्ग एकदम निस्तब्ध, एकदम निर्जन

था–किसी से भेट होने की आशंका नही थी। वह बिना किसी रूकावट के जमीदार के मकान के सामने आकर खड़ी हुई। ड्योढ़ी पर वृद्ध दरबान कृष्णसिंह खाट बिछा, तुलसीकृत रामायण पड़ रहे थे। पार्वती को प्रवेश करते देखकर उसने नेत्र नीचे किये ही पूछा–'कौन है?'

पार्वती ने कहा–'मै।'

दरबानजी ने समझा कि कोई स्त्री है। दासी समझकर फिर कोई प्रश्न नही किया और गा–गाकर रामायण पढ़ने मे निमग्न हो गये। पार्वती चली गयी। गरमी के कारण बाहरी आंगन मे कई नौकर सो रहे थे; उनमे से कितने ही पूर्ण–निद्रित और कितने ही अर्द्ध–जाग्रत थे। नीद की झोक मे एकाध ने पार्वती को जाते देखा, लेकिन दासी समझकर किसी ने कुछ रोक–टोक नही की। पार्वती निर्विध्न सीढ़ी से होकर ऊपर कोठे पर चली गयी। इस घर का एक–एक कमरा और एक–एक कोना उसका जाना हुआ था। देवदास के कमरे को पहचानने मे उसे जरा भी देर नही लगी। किवाड़ खुला हुआ था और भीतर एक दीपक जल रहा था। पार्वती ने भीतर आकर देखा, देवदास पलंग पर सो रहे है। सिर के पास उस समय भी एक पुस्तक खुली पड़ी थी, इससे जान पड़ता है कि वह अभी ही सोये है। दिये की टेम को तेज कर चुपचाप देवदास के पांव के पास आकर बैठ गयी। केवल दीवाल पर टंगी हुई घड़ी 'टन–टन' शब्द करती है; इसे छोड़कर सभी सो रहे है, सभी जगह सन्नाटा छाया हुआ है। पांव के ऊपर हाथ रखकर पार्वती ने धीरे से कहा–'देव दादा...!'

देवदास ने नीद की झोक में सुना कि कोई उसे बुला रहा है। उसने उसी तरह लेटे हुए बिना आंख खोले कहा–'हूं!'

'देव दादा!'

इस बार देवदास आंख मीचते हुए उठ बैठे। पार्वती के मुंह पर घूंघट नही था, घर मे दीपक तीव्र ज्योति से जल रहा था, देवदास ने सहज ही पहचान लिया। किन्तु फिर भी उसे पहले विश्वास नही हुआ। पूछा–'यह क्या, पत्तो?'

देवदास ने घड़ी की ओर देखा। विस्मय पर विस्मय बढ़ता गया–'इतनी रात मे!'

पार्वती ने कोई उत्तर नही दिया। वह मुंह नीचे किये बैठे रही। देवदास ने फिर पूछा–'इतनी रात मे क्या घर से अकेली आयी हो?'

पार्वती ने कहा–'हां।'

देवदास ने उद्विग्न, आशंकित और कलंकित होकर पूछा–'कहो, क्या रास्ते मे डर भी नही मालूम हुआ?'

पार्वती ने मीठी हंसी हंसकर कहा–'मुझे भूत का भय नहीं लगता।'

'भूत का भय नही करती, तो आदमी का भय तो करती हो; क्यो आयी?'

पार्वती ने कोई उत्तर नही दिया, किन्तु मन–ही–मन कहा कि इस समय मुझे उसका भी डर नही है।

'मकान मे कैसे आई? क्या किसी ने देखा नही?'

'दरबान ने देखा है।'

देवदास ने आंख फाड़कर देखा कहा– 'दरबान ने देखा' 'और किसी ने?

'आंगन मे नौकर लोग सो रहे थे, शायद उनमे से किसी ने देखा हो।'

देवदास ने बिछौना से कूदकर किवाड़ बंद कर दिये–'किसी ने पहचाना भी?'

पार्वती ने कोई भी उत्कंठा प्रकट न की। सहज भाव से उत्तर दिया– 'वे सभी लोग मुझे जानते है, शायद किसी ने पहचाना हो।'

'क्या कहती हो? ऐसा काम क्यो किया, पत्तो?'

पार्वती ने मन ही मन कहा कि यह तुम किसी तरह समझ सकते हो? किंतु प्रकट मे कुछ नही कहा– 'माथा नबाये बैठी रही।'

'इतनी रात मे–छि:! छि! कल तुम कौन –सा मुंह दिखाओगी?'

पार्वती ने मुंह नीचे किए हुए ही कहा–'वह साहस मुझमे है।'

देवदास ने क्रोध नही किया, किंतु बड़ी उत्कंठा से कहा–'छि:! छि:! अब भी क्या तुम लड़की हो? यहां पर इस तरह आते हुए क्या तुम्हे कुछ लज्जा मालूम नही हुई।'

पार्वती ने सिर हिलाकर कहा–'कुछ भी नही!'

'क्या लज्जा से तुम्हारा सिर नीच न होगा?'

यह प्रश्न सुनकर पार्वती ने तीव्र किंतु करुण–दृष्टि से देवदास के मुख की ओर कुछ क्षण देखकर निस्संकोच होकर कहा–'सिर तो तब नीचा होता, अगर मै यह अच्छी तरह से न जानती होती कि तुम मेरी सारी लज्जा को ढंक दोगे।'

देवदास ने विस्मित एवं हतबुद्धि होकर कहा–'मैं! किंतु मै कैसे मुंह दिखा सकूंगा?'

पार्वती ने उसी भांति अविचलित कंठ से कहा–'तुम? किंतु तुम्हारा क्या हो सकता है, देव दादा?' थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने फिर कहा–'तुम पुरुष हो! आज नही तो कल तुम्हारे कलंक की बात सब अवश्य भूल जायेगे। दो दिन के बाद किसी से इसका ध्यान भी नही रहेगा कि कब, किस रात मे हतभागिनी पार्वती सब–कुछ तुच्छ समझकर तुम्हारे पद–रज मे लीन होने आई थी।'

'यह क्या पत्तो?'

'और मैं?'

'मंत्र–मुग्ध की भांति देवदास ने कहा–और तुम?'

'मेरे कलंक की बात कहते हो? नही, मुझे कलंक नही लगेगा। तुम्हारे पास मै छिपे–छिपे आई, यदि यह कहकर मेरी निंदा होगी तो वह निंदा मुझे नही लग सकती।'

'यह क्या पत्तो, रोती हो?'

'देव दादा, नदी मे इतना जल भरा हुआ है! क्या इतने जल मे भी मेरा कलंक नही धुल सकता?'

'सहसा देवदास ने पार्वती के दोनो हाथ्थ पकड़ लिये और कहा–पावर्ती!'

पार्वती ने देवदास के पांव के ऊपर सिर रखकर अवरुद्ध कंठ से कहा–'यही पर थोड़ा सा स्थान दो, देव दादा!'

इसके बाद दोनो ही चुप रहे। देवदास के पांव पर से बहकर अनेको अश्रुकण शुभ्र–शैया को भिगोने लगे।

बहुत देर के बाद देवदास ने पार्वती के मुख को ऊपर उठाकर कहा–'पत्तो, क्या मुझे छोड़कर तुम्हे और कोई उपाय नही है?'

पार्वती ने कुछ नही कहा। उसी भांति पांव पर सिर रखे हुए पड़ी रही। निस्तब्धता के भीतर एकमात्र वही लंबी-लंबी उसासे भर रही थी। टन-टन करके घड़ी मे दो बज गये। देवदास ने कहा-'पत्तो!'

पार्वती ने रुद्ध कंठ से कहा-'क्या?'

'पिता-माता बिलकुल सहमत नही है-यह सुना है?' पार्वती ने सिर हिलाकर जवाब दिया-'सुना है।' फिर दोनो चुप रहे। बहुत देर बाद देवदास ने दीर्घ नि:श्वास फेककर कहा-'तब फिर?'

पानी मे डूबने से मनुष्य जिस प्रकार जमीन को पकड़ लेता है और फिर किसी भांति छोड़ना नही चाहता, ठीक उसी भांति पार्वती ने अज्ञानवत देवदास के दोनो पांवो को पकड़ रखा था। उसके मुख की ओर देखकर पार्वती ने कहा-'मै कुछ नही जानना चाहती हूं, देव दादा!'

'पत्तो, माता-पिता की अवज्ञा करे?'

'दोष क्या है?'

'तब तुम कहां रहोगी।'

पार्वती ने रोते-रोते कहा-'तुम्हारे चरणो में।'

फिर दोनो व्यक्ति स्तब्ध बैठे रहे। घड़ी मे चार बज गये। ग्रीष्मकाल की रात थी; थोड़ी ही देर मे भोर होता हुआ जानकर देवदास ने पार्वती का हाथ पकड़ कर कहा-'चलो, तुम्हे घर पहुंचा आवे।'

'मेरे साथ चलोगे?'

'हानि क्या है? यदि बदनामी होगी तो कुछ उपाय भी निकल आयेगा।' 'तब चलो।'

दोनो धीरे-धीरे बाहर चले गये।

दूसरे दिन पिता के साथ देवदास की थोड़ी देर के लिए कुछ बातचीत हुई। पिता ने उससे कहा-'तुम सदा से मुझे जलाते आ रहे हो जितने दिन इस संसार मे जीवित रहूंगा उतने दिन यो ही जलाते रहोगे। तुम्हारे मुंह से ऐसी बात का निकलना कोई आश्चर्य नही है।'

देवदास चुपचाप मुंह नीचे किए बैठे रहे।

पिता ने कहा-'मुझे इससे कोई संबंध नही है, जो इच्छा हो, तुम अपनी मां से मिलकर करो।'

देवदास की मां ने इस बात को सुनकर कहा-'अरे, क्या यह भी नौबत मुझे देखनी बदी थी?'

उसी दिन देवदास माल-असबाब बांधकर कलकत्ता चले गये। पार्वती उदासीन भाव से कुछ सूखी हंसी हंसकर चुप रही। पिछली रात की बात को उसने किसी से नही जताया। दिन चढ़ने पर मनोरमा आकर बैठी और कहा-'पत्तो, सुना है कि देवदास चले गये?'

'हां।'

'तब तुमने क्या सोचा है?' उपाय की बात वह स्वयं नही जानती थी, फिर दूसरे से क्या कहेगी? आज कई दिनो से वह बराबर इसी बात को सोचती रहती है, किंतु किसी प्रकार यह स्थिर नही कर सकी कि उसकी आशा कितनी और निराशा कितनी है। जब मनुष्य ऐसे दुख के समय मे आशा-निराशा का किनारा नही देखता, तो उसके दुर्बल हृदय बड़े भय से आशा का पल्ला पकड़ता है। जिसमे उसका मंगल रहता है, उसी बात की आशा करता है। इच्छा व अनिच्छा से उसी ओर नितांत उत्सुक नयन से देखता है। पार्वती को अपनी इस दशा मे यह पूरी आशा थी कि कल रात को व्यापार के कारण वह

निश्चय ही विफल –मनोरथ न होगी। विफल होने पर उसकी अवस्था क्या होगी, यह उसके ध्यान के बाहर की बात है। इसी से सोचती थी देवदास फिर आयेगे। फिर मुझे बुलाकर कहेगे– पत्तो, तुम्हे मै शक्ति रहते किसी तरह दूसरे के हाथ न जाने दूंगा। किंतु दो दिन बाद पार्वती ने निम्नलिखित पत्र आया–

'पार्वती, आज दो दिन से बराबर तुम्हारी बाते सोच रहा हूं। माता–पिता की भी यह इच्छा नही है कि हमारी तुम्हारे साथ विवाह हो। तुमको सुखी करने मे उन लोगो को ऐसी कठिन वेदना पहुंचानी होगी, जो मुझसे नही हो सकती। अतएव उनके विरुद्ध यह काम कर कैसे सकता हूं? तुम्हे संभवत: अब आगे पत्र लिख सकूंगा, इसलिए इस पत्र मेसब बाते खोलकर लिखता हू। तुम्हारा घराना नीच है। कन्या बेचने और खरीदने वाले घर की लड़की मां किसी भी घर मे नही ला सकती। फिर घर के पास ही तुम्हारा कुटुंब ठहरा, यह भी उनके मत से ठीक नही है। रही बाबू जी की बात, वह तो तुम सभी जानती हो। उस रात की बात सोचकर मुझे बहुत ही दुख होता है। तुम्हारी, जैसी अभिमानिनी लड़की ने वह काम कितनी बड़ी व्यथा पाने पर किया होगा, यह मै अच्छी तरह जानता हूं।

'और भी एक बात है। तुमको मैने कभी प्यार किया हो, यह बात मेरे मन मे नही उठती। आज भी तुम्हारे लिए मेरे हृदय मे कुछ अत्यधिक क्लेश नही है। केवल इसी का मुझे दुख है कि तुम मेरे लिए कष्ट पा रही हो। मुझे भूल जाने की चेष्टा करो। यही मेरा आंतरिक आशीर्वाद है कि तुम इसमे सफल हो।

देवदास–'

जब तक देवदास ने पत्र डाक–घर मे नही छोड़ा था, तब तक केवल एक बात सोचते रहे, किंतु पत्र रवाना करने के बाद ही दूसरी बात सोचने लगे। हाथ का ढेला फेककर वे एकटक उसी ओर देखते रहे। किसी अनिष्ट की आशंका उनके मन मे धीरे–धीरे उठने लगी। वे सोचते थे कि यह ढेला उसके सिर पर जाकर कैसा लगेगा? क्या जोर से लगेगा? जिंदा तो बचेगी? उस रात मेरे पांव पर अपना सिर रखकर वह कितनी रोती थी। पोस्ट ऑफिस से मैस लौटते समय रासते मे पद–पद पर देवदास के मन मे यही भाव उठने लगा। यह काम क्या अच्छा नही हुआ? और सबसे बड़ी बात देवदास यह सोचते थे कि पार्वती मे जब कोई दोष नही है, तो फिर माता–पिता क्यो निषेध करते है? उम्र बढ़ने के साथ और कलकत्ता–निवास से उन्होने एक बात यह सीखी थी कि केवल लोगो को दिखाने के लिए कुल–मर्यादा और एक क्षुद्र विचार के ऊपर होकर निरर्थक एक प्राण का नाश करना ठीक नही। यदि पार्वती हृदय की ज्वाला को शांत करने के लिए जल मे डूब मरे, तो क्या विश्व–पिता के पांव मे इस महापातक का एक काला धब्बा नही पड़ेगा?

मैस मे आकर देवदास अपनी चारपाई पर पड़ रहे। आजकल वे एक मैस मे रहते थे। कई दिन हुए, मामा का घर छोड़ दिया– वहां उन्हे कुछ असुविधाएं होती थी। जिस कमरे मे देवदास रहते है, उसी के बगल वाले कमरे में चुन्नीलाल नामक एक युवक आज नौ बरस से निवास करते है। उनका यह दीर्घ कलकत्ता–निवास बी.ए. पास करने के लिए हुआ था, किंतु आज तक सफल मनोरथ नही हो सके। यही कहकर वे अब यहां पर रहते है। चुन्नीलाल अपने दैनिक–कर्म–संध्या–भ्रमण के लिए बाहर निकले है। लगभग भोर होने के समय फिर लौटेगे। बासा के और लोग भी अभी नही आये। नौकर दीपक जलाकर चला गया, देवदास किवाड़ लगाकर सो रहे।

धीरे-धीरे एक-एक करके सब लोग लौट आए। खाने के समय देवदास को बुलाया गया, किंतु वे उठे नही। चुन्नीलाल किसी दिन भी रात को लौटकर बासा मे नही आए थे, आज भी नही लौटे।

रात को एक बजे का समय हो गया। बासा मे देवदास को छोड़ कोई भी नही जागता है। चुन्नीलाल ने बासा मे लौटकर देवदास के कमरे के सामने खड़े होकर देखा, किवाड़ लगा है, किंतु चिराग जल रहा है, बुलाया- 'देवादास, क्या अभी जागते हो?' देवदास ने भीतर से कहा- 'जागता हूं। तुम आज इस समय कैसे लौट आये?'

चेन्नीलाल ने थोड़ा हंसकर कहा- 'देवदास, क्या एक बार किवाड़ खोल सकते हो?'

'क्यो नही?'

'तुम्हारे यहां तमाखू का प्रबंध है?'

'हां, है।' - कहकर देवदास ने किवाड़ खोल दिये। चुन्नीलाल ने तमाखू भरते-भरते कहा- 'देवदास, अभी तक क्यो जागते हो?'

'क्या रोज-रोज नीद आती है?'

'नही आती?' कुछ उपहास करके कहा= 'आज तक मै यही समझता था कि तुम्हारे जैसे भले लड़के ने आधी रात का कभी मुख न देखा होगा, किन्तु आज मुझे एक नयी शिक्षा मिली।'

देवदास ने कुछ नही कहा। चुन्नीलाल ने तमाखू पीते-पीते कहा= 'तुम इस बार जब से अपने घर से यहां आये हो, तुम्हारी तबीयत ठीक नही रहती, तुम्हे कौन सा क्लेश है?'

देवदास अनमने से हो रहे थे। उन्होने कुछ जवाब नही दिया।

'तबीयत अच्छी नही है?'

देवदास सहसा बिछौना से उठ बैठे। व्यग्र भाव से उनके मुख की ओर देखकर पूछा- 'अच्छा चुन्नी बाबू, तुम्हारे हृदय मे किसी बात का क्लेश नही है?'

चुन्नीलाल ने हंसकर कहा- 'कुछ नही।"जीवन पर्यन्त कभी क्लेश नही हुआ?'

'यह क्यो पूछतो हो?'

'मुझे सुनने की बड़ी इच्छा है।'

'ऐसी बात है तो किसी दूसरे दिन सुनना।'

देवदास ने पूछा- 'अच्छा चुन्नी, तुम सारी रात कहां रहते हो?'

चुन्नीलाल ने एक मीठी हंसी हंसकर कहा- 'यह क्या तुम नही जानते?'

'जानता हूं, लेकिन अच्छी तरह नही।'

चुन्नीलाल का मुंह उत्साह से उज्ज्वल हो उठा। इन सब आलोचनाओ मे और कुछ रहे या न रहे, किन्तु एक आंख की ओट की लज्जा रहती है। दीर्घ अभ्यास के दोष से वह चली गई। कौतुक से आंख मूंदकर पूछा- 'देवदास यदि अच्छी तरह से जानना चाहते हो तो ठीक मेरी तरह बनना पड़ेगा। कल मेरे साथ चलोगे?'

देवदास ने कुछ सोचकर कहा- 'सुनता हूं, वहां पर बड़ा मनोरंजन होता है। क्या यह सच है?'

'बिल्कुल सच है।'

'यदि ऐसी बात है तो मुझे एक बार ले चलो, मै भी चलूंगा।'

दूसरे दिन सन्ध्या के समय चुन्नीलाल ने देवदास के कमरे मे आकर देखा कि वे व्यस्त भाव से अपना सब माल-असबाब बांध-छान रहे है। विस्मित होकर पूछा- 'क्या नही जाओगे?'

देवदास ने किसी ओर न देखकर कहा- 'हां, जाऊंगा।'

'तब यह सब क्या करते हो?'

'जाने की तैयारी कर रहा हूं।'

चुन्नीलाल ने कुछ हंसकर सोचा, अच्छी तैयारी है! कहा - 'क्या तुम सब घर-द्वार वहां पर उठा ले चलोगे?'

'तब किसके पास छोड़ जाऊंगा?'

चुन्नीलाल समझ नही सके, कहा 'मै अपनी चीज-वस्तु किसी पर छोड़ जाता हूं? सभी तो बासे मे पड़ी रहती है।'

देवदास ने सहसा सचेत होकर आंखे ऊपर को उठायी, लज्जित होकर कहा -चुन्नी बाबू, आज मै घर जा रहा हूं।

'यह क्यो, कब आओगे?'

देवदास ने सिर हिलाकर कहा- 'अब मै फिर नही आऊंगा।'

विस्मित होकर चुन्नीलाल उनके मुंह की ओर देखने लगे। देवदास ने कहा- 'यह रुपये लो, मुझ पर जो कुछ उधार हो उसे इससे चुकती कर देना। यदि कुछ बचे तो दास-दासियो मे बांट देना। अब मै फिर कभी कलकत्ता नही लौटूंगा।'

देवदास मन-ही-मन कहने लगे- कलकत्ता आने से मेरा बड़ा खर्च पड़ा।

आज यौवन के कुहिराच्छन्न अंधेरे का उनकी दृष्टि भेद कर गई। वही उस दुर्दांत, दुर्विनीत कैशोर-कालीन अयाचित पद-दलित रत्न समस्त कलकत्ता की तुलना मे बहुत बड़ा, बहुत मूल्यवान जंचने लगा। चुन्नीलाल के मुख की ओर देखकर कहा- 'चुन्नी! शिक्षा, विद्या, बुद्धि, ज्ञान, उन्नति आदि जो कुछ है, सब सुख के लिए ही है। जिस तरह से चाहो, देखो, इन सबका अपने सुख के बढ़ाने को छोड़ और कोई प्रयोजन नही है।'

चुन्नीलाल ने बीच मे ही बात काटकर कहा- 'तब क्या अब तुम लिखना-पढ़ना छोड़ दोगे?'

'हां, लिखने-पढ़ने से मेरा बड़ा नुकसान हुआ। अगर मै पहले यह जानता कि इतने दिन मे इतना रुपया खर्च करके इतना ही सीख सकूंगा, तो मै कभी कलकत्ता का मुंह नही देखता।'

'देवदास, तुम्हे क्या हो गया है?'

देवदास बैठकर सोचने लगे। कुछ देर बार कहा- 'अगर फिर कभी भेट हुई तो सब बाते कहूंगा।'

उस समय प्रात: नौ बजे रात का समय था। बासे के सब लोगो तथा चुन्नीलाल ने अत्यन्त विस्मय के साथ देखा कि देवदास गाड़ी पर माल-असबाब लादकर मानो सर्वदा के लिए बासा छोड़कर घर चले गये। उनके चले जाने पर चुन्नीलाल ने क्रोध से बासे के अन्य लोगो से कहा- 'ऐसे रंगे सियार के समान आदमी किसी भी तरह नही पहचाने जा सकते।'

बुद्धिमान तथा दूरदर्शी मनुष्यो की यह रीति होती है कि तत्काल ही किसी विषय पर अपनी दृढ़

सम्मति प्रकट नही करते– एक ही पक्ष को लेकर विचार नही करते, एक ही पक्ष को लेकर अपनी धारणा स्थिर नही करते, वरन दोनो पक्षो को तुलनात्मक दृष्टि से परीक्षा करते है और तब कोई अपना गंभीर मत प्रकट करते है। ठीक इसके विपरीत एक श्रेणी के और मनुष्य होते है, जिनमे किसी विषय पर विशेष विचार करने का धर्य नही रहता। ये एकाएक अपनी भली–बुरी सम्मति स्थिर कर लेते है। किसी विषय मे डूबकर विचार करने का श्रम ये लोग स्वीकार नही करते, केवल विश्वास के बल चलते है। ये लोग संसार मे किसी कार्य को न कर कसते हो, यह बात नही है, वरन् काम पड़ने पर समय–समय पर ये लोग औरो की अपेक्षा अधिक कार्य करते है। ईश्वर की कृपा होने से ये लोग उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर प्रायः देखे जाते है और न होने से अवनति की गंभीर कन्दरा मे आजन्म के लिए पड़े रहते है, न उठ सकते है, न बैठ सकते है, और न प्रकाश की ओर देख सकते है, निश्चल, मृत, जलपिंड की भांति पड़े रहते है। देवदास भी इस श्रेणी के मनुष्य थे। दूसरे दिन प्रातः काल वे घर पहुंचे। माता ने आश्चर्य से पूछा– 'देवा, क्या कॉलेज की छुट्टी हो गई?'

दो दिन देवदास ने बड़ी चुस्ती के साथ बिताये। उसकी जो अभिलाषा थी वह पूरी नही हो रही थी– पार्वती से किसी निर्जन स्थान पर भेट नही होती। दो दिन बाद पार्वती की भी मां ने देवदास को सामने देखकर कहा– 'अगर इधर आ गये हो, तो पार्वती के विवाह तक ठहर जाओ।'

देवदास ने कहा– 'अच्छा।'

दोपहर के समय पार्वती नित्य बांध से जल लाने के लिए जाती थी। बगल मे पीतल की कलसी लेकर आज भी वह घाट पर आयी, देखा, निकट ही एक बेर के पड़ की आड़ मे देवदास जल मे बंसी फेककर बैठे है। एक बार उसके मन मे आया कि लौट चले, एक बार मन मे आया कि चुपके से जल भरकर ले चले। किंतु जल्दी मे वह कुछ भी स्थिर न कर सकी। कलसी को घाट पर रखते समय सम्भवतः कुछ शब्द हुआ, इसी से देवदास की दृष्टि से उस ओर खिंच गयी। उसने पार्वती को देख, हाथ के इशारे से बुलाकर कहा– 'पत्तो, सुन जाओ!'

पार्वती धीरे–धीरे पास जागर खड़ी हुई। देवदास ने एक बार मुख उठाया, फिर बहुत देर तक शून्य दृष्टि से जल की ओर देखते रहे। पार्वती ने कहा– 'देव दादा, मुझे कुछ कहते हो?'

देवदास ने किसी ओर देखकर कहा– 'हूं बैठो।'

पार्वती बैठी नही, सिर नीचा किये खड़ी रही। किन्तु जब कुछ देर तक कोई बातचीत नही हुई, तो पार्वती ने धीरे–धीरे एक–एक पांव घाट की ओर बढ़ाना आरंभ किया। देवदास ने एक बार सिर उठाकर उसकी ओर देखा फिर जल की ओर देखकर कहा– 'सुनो!'

पार्वती लौट आयी, किन्तु फिर भी देवदास ने कोई बात नही कही, यह देख वह लौट गयी। देवदास निस्तब्ध बैठे रहे, थोड़ी देर बाद उन्होने फिर देखा, पार्वती जल लेकर जाने की तैयारी कर रही है। यह देख वह हंसी हटाकर घाट के ऊपर आ खड़े हुए – 'मै आया हूं।' पार्वती ने केवल खड़ा रख दिया, कुछ बोली नही।

पार्वती कुछ देर तक चुपचाप खड़ी रही, अंत मे अत्यन्त मीठे स्वर से पूछा– 'क्यो?'

'तुमने लिखा नही था?'

'नही।'

'यह क्या पत्तो! उस रात की बात भूल गयी?'

'नही; किन्तु उस बात से अब काम ही क्या?'

उसका कंठ-स्वर स्थिर, किन्तु रूखा था। देवदास उसका मर्म नही जान सके, कहा- 'मुझे क्षमा करो, मै तब इतना नही समझ सका था।'

'चुप रहो, ये सब बाते मुझे नही सुहाती।'

'मै जिस तरह से होगा, मां-बाप को राजी करूंगा। सिर्फ तुम...!'

पार्वती ने देवदास के मुंह की ओर एक बार तीखी नजर से देखकर कहा- 'तुम्हारे ही मां-बाप है, मेरे नही? क्या उनकी इच्छा-अनिच्छा से मुझे कोई प्रयोजन नही है?'

देवदास ने लज्जित होकर कहा- 'क्यो नही है पत्तो, पर वे लोग तो राजी है, सिर्फ तुम...!'

'तुम कैसे जानतो हो कि वे लोग राजी है, वे बिल्कुल राजी नही है।'

देवदास ने हंसने की व्यर्थ की चेष्टा करके कहा- 'अरे नही, वे लोग राजी है; यह मै अच्छी तरह से जनता हूं। सिर्फ तुम...!'

पार्वती ने बीच मे ही बात काटकर तीव्र कंठ से कहा- 'सिर्फ मै तुम्हारे साथ? छि...!' पलक मारते देवदास की दोनो आंखे अग्नि की तरह जल उठी। उसने अवरुद्ध कंठ से कहा- 'पार्वती, क्या मुझे भूल गयी।'

पहले पार्वती भी कुछ चंचल हो उठी, किन्तु दूसरे ही क्षण आत्म-संवरण कर शांत और कठिन स्वर से उत्तर दिया- 'नही, भूलूंगी क्यो? लड़कपन से ही तुम को देखती आयी हूं। होश संभला तभी से तुमसे डरती हूं- क्या उसी डर को तुम दिखाने आये हो? पर क्या मुणे भी तुम नही पहचानते?' यह कहकर वह निर्भीक दोनो आंखो को ऊपर उठाकर खड़ी हो रही।

पहले देवदास के मुंह से कोई बात नही निकली, फिर कहा- 'सर्वदा से मुझसे तुम डरती ही आयी हो और कुछ नही?'

पार्वती ने दृढ़ स्वर से कहा - 'नही और कुछ नही।'

'सच कहती हो?'

'हां, सच कहती हूं। तुम पर मेरी कुछ भी श्रद्धा नही है। मै जिसके यहां जा रही हूं, वे धनवान, बुद्धिमान, शांत और स्थिर है। वे धार्मिक है। मेरे बाप मेरा भला सोचते है, इसी से वे तुम्हारे जैसे अज्ञान, अव्यवस्थित वित्त, दुर्दान्त मनुष्य के हाथ मुझे किसी तरह नही देना चाहते। तुम रास्ता छोड़ दो।'

एक बार देवदास ने कुछ इधर-उधर किया। एक बार रास्ता छोड़ने के लिए भी तैयार हुए; परन्तु फिर दृढ़ता के साथ मुंह उठाकर कहा- 'इतना अहंकार?'

पार्वती ने कहा - 'क्यो नही? तुम कर सकते हो और मै नही? तुम मे रूप है, गुण नही, मुझ मे रूप भी है, गुण भी है... तुम बड़े आदमी हो, लेकिन मेरे पिता भी भिक्षुक नही है। इसे छोड़ मै स्वयं भी तुम लोगो से किसी अंश मे हीन नही रहूंगा।'

देवदास अवाक् रह गये। पार्वती ने फिर कहना आरंभ किया- 'तुम क्या सोचते हो कि तुम मुझे हानि पहुंचाओगे? हां, अधिक नही, तो कुछ हानि अवश्य पहुंचा सकते हो, यह मै जानती हूं। अच्छा वही करो। मुझे सिर्फ रास्ता दो।'

देवदास ने हत्‌बुद्धि होकर कहा– 'हानि किस तरह पहुंचा सकता हूं?'

पार्वती ने तत्क्षण उत्तर दिया– 'अपवाद लगाकर वह बात तुम कहोगे।'

यह बात सुनकर देवदास वज्रहत की तरह देखते रहे। उनके मुख से केवल यही बात निकली– 'अपवाद लगाऊंगा, मै?'

पार्वती ने विषैली हंसी हंसकर कहा– 'जाओ, बचे हुए समय मे मेरे नाम मे कलंक लगाओ। उस रात मे मै तुम्हारे पास अकेली गयी थी, इसी बात को लेकर लोगो मे चारो ओर फैलाओ। इससे मन की बड़ी सांत्वना मिलेगी।' यह कहते–कहते पार्वती के दर्पित क्रुद्ध होठ कांपते–कांपते स्थित हो गये।

किन्तु देवदास के हृदय मे क्रोध और अपमान से ज्वलामुखी पर्वत की भांति भीषण अग्नि सुलग रही थी। उन्होने अव्यक्त स्वर से कहा – 'तुम क्या झूठी बदनामी उठाकर मै सांत्वना पाऊंगा।?' – और उसी समय बंसी के मुठिये को घुमाकर, पकड़कर भीषण कंठ से कहा– 'सुनो पार्वती, इतना रूपवान होना ठीक नही, अहंकार बहुत बढ़ जाता है।' कह कहकर तनिक धीरे स्वर से कहा– 'देखती नही हो, चन्द्रमा इतना सुन्दर है, इसी से उसमे कलंक का काला धब्बा लगा है। कमल कितना श्वेत है, इसीलिए उसमे काले भौरे बैठते है। आओ, तुम्हारे मुंह मे भी कुछ कलंक का चिन्ह दे दूं।'

देवदास के सह्य की सीमा जाती रही। उन्होने दृढ़ मुट्ठी से बंसी के मुठिये को पकड़कर इतने जोर से पार्वती के सिर मे मारा कि लगने के साथ ही सिर बायी भौ के नीचे तक फूट गया। पल भर मे सारा मुख खून से सराबोर हो गया।

पार्वती पृथ्वी पर गिर पड़ी। कहा– 'देव दादा, क्या किया?'

देवदास ने बंसी टुकड़े–टुकड़े कर, पानी मे फैक उत्तर दिया– 'अधिक कुछ नही जरा–सा कटा गया है।'

पार्वती आकुल कंठ से रो उठी– 'बाप रे बाप, देव दादा!'

देवदास ने बारीक कुरते को फाड़कर पानी मे भिगोकर बांधते हुए कहा– 'घबराओ नही पत्तो, यह हल्की–सी चोट जल्दी ही अच्छी हो जायेगी, सिर्फ दाग रह जायेगा। यदि कोई इसके विषय मे पूछे तो झूठी बात कहना, नही तो अपने कलंक की बात प्रकट करना।'

'अरे बाप रे बाप!'

'छि:! ऐसा न कहो पत्तो! विदाई के अंतिम दिनो मे सिर्फ एक निशान बनाये रखने के लिए यह चिन्ह दे दिया है। इस सोने से मुख को तुम आरसी मे कभी–कभी देखोगी तो?' यह कहकर उत्तर पाने की कोई अपेक्षा न कर देवदास चलने के लिए तैयार हुए।

पार्वती ने व्याकुल होकर रोते–रोते कहा– 'उफ! देव दादा!'

देवदास लौट आये। आंख के कोने मे एक बिंदु जल था। बहुत स्नेह–भरे कंठ से कहा– 'क्यो, पत्तो?'

'किसी से कहना मत।'

देवदास ने क्षण–भर मे ही खड़े होकर झुककर पार्वती के केशो के ऊपर उठाकर अधर स्पर्श कर कहा– 'छि:! तुम क्या कोई दूसरी हो? शायद तुम्हे याद न हो, बचपन मे मैने शरारत से कई बार तुम्हारे कान मल दिये है।'

'देव दादा, मुझे क्षमा करो।'

'यह तुम्हे नही कहना होगा भाई, क्या सचमुच ही मुझे भूल गयी पत्तो? मैने कब तुमको क्षमा नही किया है?'

'देव दादा...!'

'पार्वती, तुम तो जानती ही हो, मै अधिक बाते नही कर सकता। बहुत सोच-विचार कर कोई काम मुझसे नही हो सकता, जो मन मे आता है वही कर बैठता हूं।' यह कहकर देवदास ने पार्वती के सिर पर हाथ रखकर आर्शीवाद देते हुए कहा- 'तुमने अच्छा ही किया। मेरे यहां रहकर सम्भवत: तुम सुख नही पाती, किन्तु तुम्हारे इस देव दादा को अक्षय स्वर्ग सुख मिलता।'

इसी मय बांध की दूसरी ओर से आदमी आ रहे थे। पार्वती धीरे-धीरे जल लेने के लिए उतरी थी। देवदास चले गये। पार्वती जब घर लौटकर आयी, तो दिन ढल गया था। दादी ने उसे देखकर कहा- पत्तो, क्या पोखर खन के पानी लाती हो?'

किन्तु उसके मुंह की बात मुंह मे ही रह गयी। पार्वती के मुंह की ओर देखते ही चिल्ला उठी- 'बाप रे बाप, यह क्या हुआ?'

घाव से अब भी खून बह रहा था। कपड़े का टुकड़ा प्राय: खून से तर हो गया था। रोते-रोते कहा- 'बाप रे बाप, तेरा ब्याह है पत्तो!'

पत्तो ने सहज भाव से उत्तर दिया- 'घाट पर पांव फिसल जाने से सिर के बल ईंटो पर गिर पड़ी थी, जिससे कुछ चोट आ गयी।'

इसके बाद सब मिलकर सुश्रुषा करने लगे। देवदास ने सच कहा था- 'आघात अधिक नही है।' चार-पांच दिनो मे ही वह सूख गया। इसी भांति आठ-दस दिन बीत गये। फिर एक दिन रात के समय हाथीपोता गांव के जमीदार भुवनमोहन चौधरी वर बनकर विवाह करने के लिए आये। उत्सव बहुत तड़क-भड़क के साथ नही मनाया गया। भुवन बाबू नासमझ आदमी नही थी- इस प्रोढ़ावस्था मे दूसरा विवाह करने के समय छोकरा बनकर आना ठीक नही।

वर की उम्र चालीस वर्ष नही, कुछ ऊपर ही है, गौरवर्ण और मोटा-सा थुलथुल शरीर है। कच्ची-पक्की मूंछे मिलाकर खिच्ड़ी हो रही थी और सिर का अगला भाग सफाचट हो रहा था। वर को देखकर कोई हंसा और कोई चुप ही रहा। भुवन बाबू शांत गंभीर मुख से किसी अपराधी की भांति विवाह मंडप मे आकर खड़े हुए। कोहबर मे स्त्रियो ने उनके साथ हंसी-मंजाक नही किया। कारण, ऐसे विज्ञ, गंभीर मनुष्य के साथ हंसी करने का किसी को साहस नही हुआ। शुभ-दृष्टि के समय पार्वती किचकिचा-किचकिचाकर देखती रही। होठ कोण मे थोड़ी हंसी की रेखा भी थी। भुवन बाबू ने छोटे बच्चो की तरह दृष्टि नीची कर ली। गांव की स्त्रियां खिलखिलाकर हंस रही थी। चक्रवर्ती महाशय इधर-उधर दौड़-धूप कर रहे थे। प्रवीण जमाता को पाकर वे कुछ व्यस्त से हो उठे। जमीदार नारायण मुखोपाध्याय आज कन्या-पक्ष के सब कर्ता-धर्ता थे। वे पक्के-प्रबंधकर्ता थे। किसी भी तरह की त्रुटि नही होने पायी। शुभ कर्म भली-भांति समाप्त हो गया।

दूसरे दिन प्रात:काल चौधरी महाशय ने एक बॉक्स गहना बाहर निकालकर रख दिया। ये सब गहने पार्वती के शरीर मे जगमगा उठे। माता ने उसे देख आंचल से आंख का आंसू पेछा। पास ही

जमीदारिन खड़ी थी, उन्होने सस्नेह तिरस्कार करके कहा– 'आज आंख का आंसू बहाकर अशुभ न करो!'

सन्ध्या के कुछ पहले मनोरमा ने पार्वती को एक निर्जन घर मे ले जाकर आर्शीवाद दिया। कहा– 'जो हुआ, अच्छा ही हुआ, अब देखोगी कि तुम पहले से कितने सुखी हो।'

पार्वती ने थोड़ा हसंकर कहा– 'हां होऊंगी। जम के साथ-साथ कल थोड़ा परिचय हुआ है न!'

'यह कैसी बात?'

'समय पर सब देख लोगी।' मनोरमा ने बात को दूसरी ओर घुमाकर कहा– 'यदि तुम्हारी इच्छा हो तो एक बार देवदास को इस सोने की प्रतिमा को लाकर दिखाऊं?'

पार्वती चमक उठी– 'ला सकती हो बहिन! क्या एक बार बुलाकर नही ला सकती?'

मनोरमा का कंठ स्वर सिहर उठा– 'क्यो पत्तो?'

पार्वती ने हाथ का कड़ा घुमाते-घुमाते अन्यमनस्क भाव से कहा– 'एक बार उसके पांव की धूल को सिर पर चढ़ाऊंगी, आज जाऊंगी न!'

मनोरमा ने पार्वती को छाती से लगा लिया, फिर दोनो बहुत देर तक रोती रही। सन्ध्या हो गयी, अंधकार बढ़ गया। दादी ने द्वार ठेलकर बाहर से ही कहा– 'ओ पत्तो, ओ मनो, तुम लोग जरा बाहर आना बहिन!'

उसी रात पार्वती स्वामी के घर चली गयी।

और देवदास? उन्होने उस दिन कलकत्ता के ईडन गार्डन की एक बेच पर बैठे-बैठे सारी रात बिता दी। उन्हे अत्यंत क्लेश आथवा मार्मिक वेदना हुई हो, यह बात नही है। उनके हृदय मे न जाने कैसा एक शिथिल-उदासीन भाव धीरे-धेरे जमा हो रहा था। निद्रित अवस्था मे हठात् शरीर के किसी एक अंग मे पक्षपात हो जाने से नीद टूटने पर जैसे उसके ऊपर ढूंढने पर भी अपना कोई अधिकार नही पाने से विस्मित और स्तम्भित मन को ठीक नही कर पाते, क्योकि उसका आजन्म का साथी, सर्वदा का विश्वासी अंग उसके आह्वान का कोई प्रत्युत्तर नही देता; धीरे-धीरे समझ आती है और धीरे-धीरे ज्ञान उत्पन्न होता है कि अब उस पर अपना कोई अधिकार नही है। देवदास भी ठीक उसी भांति धीरे-धीरे समझ रहे थे कि समय और संसार मे अकस्मात पक्षाघात होने से वे उनसे सर्वदा के लिए विलग हो गये। अब उनके ऊपर मिथ्या, क्रोध और अभिमान करके कुछ नही किया जा सकता। अधिक अधिकार की बात सोचने से भी भारी भूल होगी। उसके समय सूर्योदय हो रहा था। देवदास ने खड़े होकर सोचा, कहा चलूं? हठात स्मरण हुआ कि कलकत्ता के उसी मैस मे, वहां पर चुन्नीलाल है। देवदास उसी ओर चलने लगे। रास्ते मे दो बार धक्का खाया, ठोकर खाने से अंगुली लहू-लुहान हो गयी। धक्का लगने से एक आदमी के शरीर पर गिर रहे थे, उसने मतवाला कहकर ढकेल दिया। इसी भांति भटकते-भटकते सन्ध्या के समय मैस के दरवाजे पर आकर खड़े हुए। उस समय चुन्नीलाल सज-धजकर बाहर जा रहे थे– 'यह क्या, देवदास?'

देवदास चुपचाप देखते रहे। 'कब आये? मुंह सूखा हुआ हुआ है। नहाना खाना क्या अब तक कुछ नही हुआ?' देवदास रास्ते मे ही बैठ गये। चुन्नीलाल हाथ पकड़कर भीतर ले गये। अपनी शैया पर बैठकर शांत करके पूछा– 'क्या मामला है देवदास?'

'कल मकान से आया हूं?'

'कल सारे दिन कहां थे? रात भी कहां थे?'

'ईडन गार्डन मे।'

'पागल तो नही हो! क्या हुआ है।'

'सुनकर क्या करोगो?'

'नही कहो, अभी खाओ-पियो। तुम्हारा सामान कहां है?'

'कुछ भी साथ नही लाया हूं।'

'अच्छा रहने दो, अभी चलकर खाओ-पियो।'

तब चुन्नीलाल ने जोर देकर खिलाया-पिलाया; शैया पर सोने का आदेश देकर दरवाजा बंद करते-करते कहा - 'अभी थोड़ी सोने की चेष्टा करो, मै रात को आकर तुम्हे उठाऊंगा।' यह कहकर वे उस समय तक के लिए चले गये। रात को दस बजे उन्होने लौटकर देखा कि देवदास उनके बिछौने पर गाढ़ी नीद मे सो रहे है। उन्हे जगाया नही। एक कम्बल ओढ़कर नीचे चटाई पर सो रहे। रात-भर देवदास की नीद नही टूटी और प्रातः काल मे भी सोते ही रहे। दस बजे उठकर बैठे। पूछा- 'चुन्नी बाबू, कब आये?'

'अभी आया हूं।'

'तुम्हे किसी तरह का कष्ट तो नही हुआ?'

'कुछ भी नही हुआ।'

देवदास ने कुछ देर तक उनके मुंह की ओर दोखकर कहा- 'चुन्नीलाल बाबू, मेरे पास कुछ नही है, क्या तुम मुझे आश्रय दोगे?'

चुन्नीलाल कुछ हंसे। वे जानते थे कि देवदास के पिता बड़े धनवान व्यक्ति है। इसी से हंसकर कहा- 'मै आश्रय दूंगा? अच्छी बात है, तुम्हारी जितने दिन इच्छा हो, यहां पर रहो, कोई चिन्ता नही।'

'चुन्नीबाबू, तुम्हारी आमदनी कितनी है?'

'भाई, मेरी आमदनी मामूली है। मकान पर कुछ जमीदारी है। उसे भाई साहब को सौपकर मै यहां रहता हूं। वे हर महीने सत्तर रुपये के हिसाब से भेज देते है। इतने मे तुम्हारा और मेरा खर्च अच्छी तरह से चल जायेगा।'

'तुम मकान क्यो नही जाते?'

चुन्नीलाल ने उधर मुंह फिराकर कहा- 'बहुत सी बाते है।'

देवदास ने और कुछ नही पूछा। धीरे-धीरे भोजन आदि की बुलाहट आई। इसके बाद दोनो भोजनादि समाप्त करके फिर धर मे आकर बैठे। चुन्नीलाल ने पूछा- 'देवदास क्या बाप के साथ कुछ झगड़ा हो गया है।'

'नही।'

'और किसी के साथ?'

देवदास ने उसी भांति जवाब दिया- 'नही।'

इसके बाद चुन्नीलाल को सहसा दूसरी बात का स्मरण आया। कहा- 'ओहो, तुम्हारा तो अभी ब्याह

नही हुआ है !'

इसी समय देवदास दूसरी ओर मुंह फेरकर सो रहे। थोड़ी ही देर मे चुन्नीलाल ने देखा कि देवदास सो गये। इसी भांति सोते-सोते और भी दो दिन बीत गये। तीसरे दिन प्रात: काल देवदास स्वस्थ होकर बैठे थे। मुख से ऐसा जान पड़ता था मानो वह घनी छाया बहुत कुछ हट गई हो। चुन्नीलाल ने पूछा- 'आज तबीयत कैसी है?'

'पहले से अच्छी जान पड़ती है। अच्छा चुन्नी बाबू, रात मे तुम कहां जाते हो?'

आज चुन्नीलाल ने लज्जित होकर कहा- 'हां, मै जाता हूं, पर उसकी कौन बात है?' अच्छा, आज कॉलेज जाओगे न?'

'नही, लिखना-पढ़ना छोड़ दिया।'

'छि:! ऐसा भी हो सकता है, दो महीने बाद तुम्हारी परीक्षा होगी! पढ़ना भी तुम्हारा ख़्राब नही है। इस साल परीक्षा दो न!'

'नही, पढ़ना छोड़ दिया।'

चुन्नीलाल चुप ही रहे। देवदास ने फिर पूछा- 'कहां
चुन्नीलाल ने देवदास के मुंह की ओर देखकर कहा- 'उसे जानकर क्या करोगे, मै कुछ अच्छी जगह नही जाता।'

देवदास ने अपने मन-ही-मन मे कहा- 'अच्छी हो या बुरी इससे क्या मतलब- 'चुन्नी बाबू, मुझे साथ ले चलोगे या नही।'

'ले चल सकता हूं, किन्तु मत चलो।'

'नही, मै चलूंगा। अगर अच्छा नही लगेगा, तो मै फिर नही जाऊंगा। पर तुम जिस सुख की आशा से नित्य उन्मुख रहते हो...। जो हो चुन्नीबाबू, मै निश्चित चलूंगा।'

चुन्नीलाल ने मुंह फेर, कुछ हंस के मन-ही-मन कहा- 'मेरी दशा! प्रकट मे कहा- 'अच्छा, चलना।'

सन्ध्या के कुछ पहले ही धर्मदास चीज-वस्तु आ पहुंचा। देवदास को देखकर रोते-रोते कहा-
'देवदास आज तीन-चार दिन हुए, मां कितना रो रही है।'

'क्यो रोती है?'

'बिना किसी से कहे-सुने ो एकाएक चले आये।' एक पत्र बाहर निकालकर हाथ मे देकर कहा- 'मां की चिट्ठी है।'

चुन्नीलाल भीतर-ही-भीतर खबर जानने के लिए उत्सुक भाव से देख रहे थे। देवदास ने पत्र पढ़कर रख दिया। मां ने घर पर आने के लिए बड़े अनुरोध के साथ बुलाया है। घर मे ही वे केवल देवदास के मानसिक कष्ट का कुछ-कुछ अनुमान कर सकी थी। धर्मदास के हाथ छिपाकर बहुत सा रूपया भी भेज दिया था। धर्मदास ने वह सब देवदास के हाथ मे देकर कहा- 'देवदास, घर चलो।'

'मै नही जाऊंगा। तुम लौट जाओ!'

रात मे दोनो मित्र सज-धज के बाहर निकले। देवदास की इन सबकी ओर प्रवृत्ति नही थी; किंतु चुन्नीलाल साधारण पोषाक पहनकर बाहर चलने को राजी नही हुए। रात के नौ के समय एक किराये की गाड़ी चितपुर के एक दो तल्ले मकान के सामने आकर खड़ी हुई। चुन्नीलाल देवदास का हाथ पकड़े हुए

भीतर चले गये। गृहस्वामी का नाम चन्द्रस्वामी है- उन्होने आकर अभ्यर्थना की। इस समय देवदास का सारा शरीर जल उठा। वे इधर कई दिनो से अपनी अज्ञानता मे नारी-देह की छाया के ऊपर भी विद्वेष करने लगे थे, यह सब वह स्वयं नही जानते थे। चन्द्रमुखी को देखते ही हृदय की संचित घृणा दावानल की भांति प्रज्ज्वलित हो उठी। चुन्नीलाल के मुख की ओर देखकर भौ चढ़ाकर कहा- 'चुन्नीलाल, यह किस मनहूस जगह मे ले आये?' उनके तीव्र कंठ और आंख की दृष्टि देखकर चन्द्रमुखी और चुन्नीलाल दोनो ही हत्‌बुद्धि से हो गये। दूसरे ही क्षण चुन्नीलाल ने अपने को संभालकर देवदास का एक हाथ पकड़कर कोमल कंठ से कहा- 'चलिये, भीतर चलकर बैठिये।'

देवदास कुछ नही बोले, कमरे मे जाकर बिछौने पर गर्दन झुका के विपन्न-मुख बैठ गये। पास ही चन्द्रमुखी भी चपचाप बैठ गई। दासी तमाखू भरकर चांदी से मढ़ा हुआ नारियल लाई। देवदास ने स्पर्श भी नही किया। चुन्नीलाल गंभीर-मुख बैठे रहे। दासी क्या करे, यह निश्चय न कर कर सकी। अंत मे चन्द्रमुखी के हाथ मे नारियल देकर चली गई। दो-एक फूंक खीचने के समय देवदास ने उसके मुख की ओर देखा और एकाएक अत्यंत घृणा से कह उठे- 'कितने असभ्य और श्रीहीना है?'

इसके पहले चन्द्रमुखी को बातचीत मे कोई हरा नही सका था। उसको अप्रतिभ करना जरा टेढ़ी खीर थी। देवदास की इस आन्तरिक घृणा की सरल और कठिन उक्ति उसके हृदय मे बिंध गई। किंतु कुछ देर बाद ही उसने अपने को संयत कर लिया। परंतु चन्द्रमुखी के मुख से धुंआ नही निकला। तब चुन्नीलाल के हाथ मे हुक्का देकर उसने फिर एक बार देवदास के मुख की ओर देखा और फिर नि:शब्द बैठी रही। तीनो ही निर्विकार हो रहे थे। केवल बीच-बीच मे गड़-गड़ करके हुक्के का शब्द होता था, वह भी मानो डरते-डरते। मित्र मंडली मे तर्क उठने पर एकाएक निरर्थक कलह हो जाने से जैसे प्रत्येक अपने मन-ही-मन फूले रहते और क्षुब्ध अन्त:करण से कहते है कि- 'यही तो!' ,उसी भांति तीनो आदमी मन-ही-मन कह रहे थे- 'यही तो, यह कैसा हुआ?'

जो हो, तीनो मे से किसी को भी आनन्द नही मिला। चुन्नीलाल तो हुक्का रखकर नीचे उतर आये, शायद उन्हे कोई दूसरा काम नही मिला। इसलिए कमरे मे अब केवल दो आदमी रह गये। देवदास ने मुख उठाकर पूछा- 'तुम अपनी दर्शनी लेती हो?'

चन्द्रमुखी ने सहसा कोई उत्तर नही दिया। इस समय उसकी उम्र छब्बीस वर्ष की थी। इन नौ-दस वर्ष के बीच मे उसका कितने ही विभिन्न प्रकृति के मनुष्यो के साथ घनिष्ठ परिचय हो चुका था, किन्तु इस प्रकार के अद्‌भुत मनुष्य से एक दिन भी भेट नही हुई थी। कुछ इधर-उधर करके उसने कहा- 'आपके पांव की धूल जब पड़ी है...!'

देवदस ने बात समाप्त नही होने दी, बीच मे ही कह उठे- 'पांव की धूल की बात नही रूपया लेती हो?'

'उसके न लेने से हम लोगो का काम कैसे चलेगा?'

'बस- यही सुनना चाहता हूं।' यह कहकर उन्होने पॉकेट से एक नोट निकाला और चन्द्रमुखी के हाथ मे देकर चलने की तैयारी की। एक बार देखा भी नही कि कितना रूपया दिया?

चन्द्रमुखी ने विनीत भाव से कहा- 'इतनी जल्दी जायेगे?'

देवदास ने कुछ नही कहा, बरामदे मे आकर चुपचाप खड़े हो गये।

चन्द्रमुखी की एक बार इच्छा हुई कि रुपया लौटा दे, किन्तु किसी तीव्र संकोच के कारण लौटा न सकी। सम्भवतः उसे कुछ डर भी मालूम हुआ था। इसे छोड़ उसे अनेको लांछना, भर्त्सना और अपमान सहने का अभ्यास है, इसीलिए निर्वाक्, निस्पन्द चौखट के ऊपर खड़ी रही। देवदास सीढ़ी से नीचे उतर गये।

सीढ़ी पर ही चुन्नीलाल से भेट हुई। उन्होने आश्चर्य से पूछा– 'कहां जाते हो?'

'बासे को जाता हूं।'

'यह क्यो?'

देवदास और दो–तीन सीढ़ी उतर गये।

चुन्नीलाल ने कहा– 'मै भी चलता हूं।'

देवदास के पास आकर उनका हाथ पकड़कर कहा– 'चलो, थोड़ा यही पर खड़े रहो, मै ऊपर से होकर अभी आता हूं।'

'नही, मै जाता हूं, तुम फिर आना।' – यह कहकर देवदास चले गये।

चुन्नीलाल ने ऊपर आकर देखा, चन्द्रमुखी तब भी उसी भांति चौखट पर खड़ी है।

उसे देखकर पूछा– 'वह चले गये?'

'हां।'

चन्द्रमुखी ने हाथ का नोट दिखाकर कहा– 'यह देखो, अच्छा होगा इसे ले जाओ, अपने मित्र को लौटा दो।'

चुन्नीलाल ने कहा– 'वे अपनी इच्छा से दे गये है, फिर मै क्यो लौटा ले जाऊं?'

इतनी देर बाद चन्द्रमुखी थोड़ा हंसी, किंतु हंसी मे आनन्द का लेश नही था। उसने कहा– 'इच्छा से नही; मै रूपया लेती हूं इसी से क्रोध करके दे गये है। हां चुन्नी बाबू, वह क्या पागल है?'

'कुछ भी नही। आज कई दिन से शायद उनका मन ठीक नही है।'

'क्यो नही मन ठीक है, कुछ जानते हो?'

'मै नही जानता, शायद मकान पर कुछ हुआ है।'

'तब यहां पर क्यो लाये?'

'मै नही लाता था, वे खुद ही जोर देकर आये थे।'

चन्द्रमुखी इस बार यथार्थ मे विस्मित हुई। कहा– 'खुद जोर देकर आये! सब जानकर!'

चुन्नीलाल ने कुछ सोचकर कहा– 'और नही तो क्या? वे सभी जानते है। मै भुलवाकर नही लाया।'

चन्द्रमुखी कुछ देर तक चुप रही, फिर न जाने क्या सोचकर कहा–'चुन्नी, मेरा एक उपकार करोगे?'

'क्या?'

'तुम्हारे मित्र कहां रहते है?'

'मेरे ही साथ।'

'एक दिन उन्हे और ला सकते हो?'

'यह मै नही कर सकता। इसके पहले वे किसी ऐसी जगह पर नही गये थे और भविष्य मे भी अब किसी ऐसी जगह पर जाने की उम्मीद नही है। किन्तु क्यो, यह तो बताओ?'

चन्द्रमुखी ने एक मलिन हंसी हंसकर कहा– 'चुन्नी, चाहे जैसे हो, एक बार उन्हे और लिवा लाओ।'
चुन्नी ने मुस्करा तथा आंखे मारकर कहा– 'धमकी पाने से कही प्रेम उत्पन्न हुआ है क्या?'
चन्द्रमुखी भी मुस्करायी, कहा– 'नही देखा, नोट दे गये है, इतना भी नही समझते!'
चुन्नी चन्द्रमुखी को कुछ पहचानते थे, सिर हिलाकर कहा– 'नही–नही नोट वाली दूसरी होती है, तुम वैसी नही हो। सच बात कहो, क्या है?'
चन्द्रमुखी ने कहा– 'सच बात तो यह है कि उनकी ओर कुछ मन का खिंचाव हो रहा है।'
चुन्नी ने विश्वास नही किया। हंसकर कहा– 'इतनी देर मे?'
इस बार चन्द्रमुखी भी हंस पड़ी। कहा– 'यह होने दो। चित्त स्वस्थ होने पर एक बार और लिवा लाना, फिर एक बार देखूंगी। लिवा लाओगे न?'
'कह नही सकता।'
'मेरे सिर की सौगंध है।'
'अच्छा, कोशिश करूंगा।'

पार्वती ने आकर देखा, उसके स्वामी की बहुत बड़ी हवेली है। नये साहिबी फेशन की नही, पुराने ढंग की है। सदर–महल, अन्दर–महल, पूजा का दालान, नाट्य–मंदिर, अतिथिशाला, कचहरी घर, तोशाखाना और अनेक दास–दासियो को देखकर पार्वती आवाक् रह गयी। उसने सुना था कि उसके स्वामी बड़े आदमी और जमीदार है। किंतु इतना नही सोचा था। अभाव केवल आदमियो का था, अर्थात् आत्मीय कुटुम्ब–कुटुम्बिनी प्राय: कोई नही है। इतना बड़ा अन्त:पुर जन–शून्य था। पार्वती नववधू है, किन्तु एकदम गृहिणी हो बैठी। परछन करके घर मे लाने के लिए केवल एक बूढ़ी फूफी थी, इन्हे छोड़ सब दास–दासियो का दल था।
सन्ध्या के कुछ पहले एक सुन्दर सुकान्तिवान बीस वर्षीय नव युवक ने प्रणाम करके पार्वती के निकट खड़े होकर कहा – 'मां, मै बड़ा लड़का हूं।'
पार्वती ने घूंघट के भीतर से ही देखा, कुछ कहा नही। उसने फिर एक बार प्रणाम करके कहा– 'मां, मै आपका बड़ा लड़का हूं, प्रणाम करता हूं।'
पार्वती ने लंबे घूंघट को सिर पर उठा, मृदु कंठ से कहा– 'यहां आओ भाई, यहां आओ।'
लड़के का नाम महेन्द्र है। वह कुछ देरी तक पार्वती के मुख की ओर अवाक् होकर देखता रहा; फिर पास मे बैठकर विनीत स्वर मे कहा– 'आज दो वर्ष हुए, मेरी मां का स्वर्गवास हो गया। इन दो वर्षों का समय हम लोगो का बड़े दुख और कष्ट से बीता है। आज तुम आयी हो, आर्शीवाद दो कि अब हम लोग सुख से रहे।'
पार्वती खुलकर सरल भाव से बातचीत करने लगी। क्योंकि एकबारगी गृहिणी होने से कितनी ही बातो को जानने ओर कितनी ही बार लोगो से बातचीत करने की जरूरत पड़ती है। किंतु यह कहना कितने ही लोगो को कुछ अस्वाभाविक जंचेगा, पर जिन्होने पार्वती के स्वभाव को अच्छी तरह से समझा है, वे देखेगे कि अवस्था के इन अनेक परिवर्तनो ने उनकी उम्र की अपेक्षा उसे कही अधिक परिपक्व बना दिया है। इसके अतिरिक्त निरर्थक लोक–लज्जा, अकारण जड़ता, संकोच उसमे कभी नही था। उसने

पूछा– 'हमारे और सब लड़के कहां है?'

महेन्द्र ने जरा हंसकर कहा– 'तुम्हारी बड़ी लड़की– मेरी छोटी बहिन– अपनी ससुराल मे है, मैने उसके पास चिट्ठी लिखी थी, पर यशोदा किसी कारणवश नही आ सकी।'

पार्वती ने दुखित होकर पूछा– 'आ नही सकी या स्वयं इच्छा से नही आयी?'

महेन्द्र ने लज्जित होकर कहा– 'ठीक नही जानता, मां!'

किन्तु उसकी बात बात और मुख के भाव से पार्वती समझ गयी कि यशोदा क्रोध के कारण नही आयी है; कहा– 'और हमारा छोड़ा लड़का?'

महेन्द्र ने कहा– 'वह बहुत जल्दी आयेगा, कलकत्ता मे परीक्षा देकर आयेगा।'

चौधरी महाशय स्वयं ही जमीदारी का काम देखते थे। इसे छोड़ वे नित्य शालिग्राम की बटिया की अपने हाथ से पूजा करते थे; अतिथिशाला मे जाकर साधु संन्यासियो की सेवा करते थे। इन सब कामो मे उनका सुबह से लेकर रात के दस-ग्यारह बजे तक का समय लग जाता था। नवीन विवाह के करने से किसी नवीन आमोद-प्रमोद के चिन्ह उनमे नही दिखायी पड़ते थे। रात मे किसी दिन भीतर आते और किसी दिन नही आ सकते थे। आते भी तो बहुत मामूली बातचीत होती थी। चारपाई पर सोकर एक गावतकिया लगाकर आंख मूंदते-मूंदते यदि बहुत कहते तो केवल यही कि 'देखो, तुम्हीं घर की मालकिन हो, सब अच्छी तरह से देख-सुन के और समझ-बूझ के काम करना।'

पार्वती सिर हिलाकर कहती– 'अच्छा!'

भुवन बाबू कहते-'और देखो, ये लड़की-लड़के... हां, ये सब तो तुम्हारे ही है।'

स्वामी की लज्जा को देखकर पार्वती की आंख के कोने से हंसी फूट निकलती थी। वे भी थोड़ा हंसकर कहते-'हां, और देखो, यह महेद्र तुम्हारा बड़ा लड़का है। अभी उस दिन बी.ए. पास हुआ है। इसके समान अच्छा लड़का-इसके समान मोहब्बती-अहा इस...!'

पार्वती हंसी दबाकर कहती-'मै जानती हूं, यह मेरा बड़ा लड़का है।'

यह तुम क्यो जानोगी। ऐसा लड़का कही भी नही देखने मे आया। और मेरी यशोमती लड़की नही, एकदम लक्ष्मी की प्रतिमा है। वह अवश्य आयेगी-क्या बूढ़े बाप को देखने नही आयेगी? उसके आने से....!'

पार्वती निकट आकर गंजे सिर पर अपने कमलवत कोमल हाथ को रखकर मृदु स्वर से कहती– 'तमको इसकी चिंता नही करनी होगी। यशोदा को बुलाने के लिए मै आदमी भेजूंगी, नही तो महेद्र खुद ही जायेगा।'

'जायेगा! जायेगा! अच्छा, बहुत दिन बिना देखे हुए। तुम आदमी भेजोगी?'

'जरूर भेजूंगी। मेरी लड़की है मै बुलवाऊंगी नही?'

वृद्ध इस समय उत्साहित हो उठ बैठते। परस्पर के संबंध को भूलकर पार्वती के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद देते और कहते-'तुम्हारा कल्याण हो! मै आशीर्वाद देता हूं, तुम सुखी हो, भगवान तुम्हे दीर्घायु करे!'

इसके बाद सहसा न जाने कौन-कौन सी बाते वृद्ध के मन मे उठने लगती थी। फिर चारपाई पर आंखे मूंदकर मन-ही-मन कहते-आह! वह मुझे बहुत प्यार करती थी।

इसी समय कच्ची मूंछो के पास से बहकर एक बूंद आंख का आंसू तकिये पर गिर पड़ता। पार्वती पोछ देती थी। कभी-कभी वे भीतर-ही-भीतर कहते-'अहा! उन सभी लोगो के आ जाने से एक बार फिर घर-द्वार जगमगा उठेगा...अहा! उन सभी लोगो के आ जाने से एक बार फिर घर द्वार जगमगा उठेगा...अहा! पहले कैसी चहल-पहल रहती थी। लड़का-लड़की, घर मे सब कोई थे, नित्य दुर्गोत्सव का आनंद रहता। फिर एक दिन सबका अंत हो गया। लड़के कलकत्ता चले गये, यशो को उसके ससुर ले गये, फिर अंधकार, श्मशान....।'

इसी समय फिर मूंछो के दोनो ओर से आंसू बह-बहकर तकिये को भिगोने लगे। पार्वती कातर होकर आंसू पोछते-पोछते कहने लगी-'महेद्र का क्यो नही विवाह किया?'

बूढ़े कहते-'अहा, वह मेरे कैसे सुख का दिन होता! यही तो सोचता था। किंतु उसके मन की बात कौन जाने? उसकी जिद को कौन तोड़े? किसी तरह से ब्याह नही किया। इसीलिए तो बुढ़ापे मे...सारा घर भांय-भांय करता था, सारा घर दुखित था, लक्ष्मी को छोड़ दरिद्र का वास होने लगा था; कोई घर में चिराग जलाने वाला नही रहा। यह सब देखा नही जाता था इसीलिए तो...।'

यह बात सुन पार्वती बड़ी दुखी होती। करूण-स्वर से, हंसी के साथ सिर हिलाकर कहती-'तुम्हारे बूढ़े होने से मै शीघ्र ही बूढ़ी हो जाऊंगी। स्त्रियो को बूढ़ी होने मे क्या देरी लगती है?'

भुवन चौधरीजी उठकर बैठते; एक हाथ उसके चिबुक पर रखकर नि:शब्द उसके मुख की ओर बहुत देर तक देखते रहते। जिस तरह कारीगर अपनी प्रतिमा को सजाकर, सिर मे मुकुट पहनाकर, दाहिने-बाएं घुमाकर बहुत देर तक देखता रहता है-फिर थोड़ा गर्व और अधिक स्नेह का भाव उत्पन्न होता है। ठीक उसी भांति भुवन बाबू को भी होता है। किसी दिन उनके अस्फुट मुख से बाहर निकल पड़ता-'आहा! अच्छा नही किया।'

'क्या अच्छा नही किया?'

'सोचता हूं, यहां पर तुम्हारी शोभा नही है।'

पार्वती हंसकर कहती-'खूब शोभा है। हम लोगो कि क्या श

वृद्ध फिर लेटकर मन-ही-मन कहते-मै समझता हूं, वह मै समझता हूं। तब तुम्हारा भला हो। भगवान तुम्हे देखेगे।

इसी भांति एक महीना बीत गया। बीच मे एक बार चक्रवर्ती महाशय कन्या को लेने आये थे। पार्वती अपनी इच्छा से नही गयी। पिता से कहा-'बाबूजी, बड़ी कच्ची गृहस्थी है, कुछ दिन बाद जाऊंगी।'

वे भीतर-ही-भीतर हंसे और मन-ही-मन कहा-

स्त्रियो की जाति ही ऐसी है। वे चले गये, पार्वती ने महेद्र को बुलाकर कहा-'भाई, एक बार मेरी बड़ी लड़की को बुला लाओ।'

महेद्र इधर-उधर करने लगा। वह जानता था कि यशोदा किसी तरह नही आयेगी। कहा-'एक बार बाबूजी का जाना अच्छा होगा।'

'छि: यह क्या अच्छा होगा? इससे तो अच्छा है कि हमीं मां-बेटे चलकर बुला लावे।'

महेद्र ने आश्चर्य से कहा-'क्या तुम जाओगी?'

'क्या नुकसान है? मुझको इसमे लज्जा नही है। मेरे जाने से अगर यशोदा आवे, अगर उसका क्रोध

दूर हो जाये, तो मेरा जाना कौन कठिन है?'

अस्तु, महेद्र दूसरे ही दिन यशोदा को लाने गया। उसने वहां जाकर कौन-सा कौशल किया, यह मै नही जानता, किंतु चार ही दिन बाद यशोदा आ गयी। उस दिन पार्वती सारी देह मे विचित्र, नये और बहुत मूल्यवान गहने पहने थी। कुछ ही दिन हुए इन्हे भुवन बाबू ने कलकत्ता से मंगवा लिया था। पार्वती आज वही सब गहने पहने हुए थी। रास्ते मे आते समय यशोदा बहुतेरी क्रोध और अभिमान की बातो को मन-ही-मन दुहरा रही थी। नयी बहू को देखकर वह एकदम अवाक् हो गयी। कोई भी विद्वेष की बात उसके मन मे नही रही। केवल अस्फुट स्वर से कहा-'यही!'

पार्वती यशोदा का हाथ पकड़ कर घर ले गयी। पास मे बैठकर एक पंखा हाथ मे लेकर कहा-'यशोदा, मां के ऊपर इतना क्रोध करना होता है?'

यशोदा का मुख लज्जा से लाल हो उठा। पार्वती तब सारे गहने एक-एक करके यशोदा के अंग मे पहनाने लगी। यशोदा ने विस्मित होकर पूछा-'यह क्या?'

'कुछ नही, सिर्फ मां की साथ।'

गहना पहनने से यशोदा का शरीर खिल उठा और पहन चुकने पर उसके अधर पर हंसी की रेखा दिखाई दी। सारे शरीर मे आभूषण पहनाकर निराभरण पार्वती ने कहा-'यशोदा, मां के ऊपर भला क्रोध करना चाहिए?'

'नही, नही क्रोध कैसा? क्रोध किस पर?'

'सुनो यशोदा, यह तुम्हारे बाप का घर है; इतने बड़े मकान मे कितने ही दास-दासियो की जरूरत है। मै भी तो एक दासी हूं। छि: बेटी, तुच्छ दासी के ऊपर इतना क्रोध करना क्या तुम्हे शोभा देता है?'

यशोदा अवस्था मे बड़ी है, किंतु बातचीत करने मे छोटी है। वह विह्वल हो गयी। पंखा हांकते-हांकते पार्वती ने फिर कहा-'दुखी की लड़की को तुम लोगो की दया से यहां पर थोड़ा-सा स्थान मिला है; मै तो भी उन्ही मे से एक हूं। आश्रित....।'

यशोदा सब तल्लीन होकर सुनती रही। अब एकाएक आत्म-विस्मरण कर पांव के पास धप् से गिरकर प्रणाम करके कहा-'तुम्हारे पांच लगती हूं मां।'

दूसरे दिन महेद्र को अकेले मे बुलाकर कहा-'क्यो, क्रोध कम हुआ?'

यशोदा ने भाई के पांच पर हाथ रखकर चटपट कहा-'भैया, क्रोध के वश, छि:-छि:, कितनी ही बाते कही है, देखो वे सब प्रकट न होने पावे।'

महेद्र हंसने लगा। यशोदा ने कहा-'अच्छा भैया, क्या कोई सौतेली मां इतना आदर-भाव करती रख सकती है?'

दो दिन बाद यशोदा ने पिता से आकर आप ही कहा-'बाबूजी, वहां पर चिट्ठी लिख दो कि मै अभी और दो महीने यही पर रहूंगी।'

भुवन बाबू ने कुछ आश्चर्य से कहा-'क्यो बेटी?'

यशोदा ने कहा-'मेरी तबीयत कुछ अच्छी नही है, इसी से कुछ दिन छोटी मां के पास रहूंगी।'

आनंद से वृद्ध की आंखो मे आंसू उमड़ आये। संध्या को पार्वती को बुलाकर कहा-'तुमने मुझे लज्जा से मुक्त कर दिया। जीती रहो, सुखी रहो!'

पार्वती ने कहा–'वह क्या?'

'वह क्या, यह तुम्हे नही समझा सकूंगा। नारायण ने आज कितनी ही लज्जा से मेरा उद्धार कर दिया।'

संध्या के अंधेरे मे पार्वती ने नहीं देखा कि उसके स्वामी की दोनो आंखे जल से डबडबा आयी है। और विनोद लाल–भुवन बाबू का छोटा लड़का, वह परीक्षा देकर घर आया, अभी तक पढ़ने ही न गया। दो–तीन दिवस देवदास ने पागलो की भांति इधर–उधर घूम–घामकर बिताये। धर्मदास कुछ कहने गया तो उस पर आंखें लाल–लाल कर धमका के भगा दिया। उनका विकृत भाव देखकर चुन्नीलाल को भी कुछ कहने का साहस न हुआ। धर्मदास ने रोकर कहा–'चुन्नी बाबू, देवदास ऐसे क्यो हो गये?'

चुन्नीलाल ने कहा–'क्या हुआ धर्मदास?'

एक अंधे ने दूसरे अंधे से रास्ता पूछा। दोनो मे एक भी हृदय की नही जानते, आंखे पोछते–पोछते धर्मदास ने कहा–'चुन्नी बाबू, जिस तरह से हो सके, देवदास को उनकी मां के पास पहुंचवाओ; अगर अब लिखे पढ़ेगे नही तो यहां रहने की जरूरत क्या?'

बात बहुत सच है। चुन्नीलाल सोचने लगे। चार–पांच दिन बाद एक दिन संध्या के ठीक उसी समय चुन्नी बाहर रहे थे। देवदास ने कही से आकर उनका हाथ थामकर कहा–'चुन्नी बाबू, वही जाते हो?'

चुन्नी ने कुंठित होकर कहा–'हां, नही कहो तो न जाऊं।'

देवदास ने कहा–'नही, मै अपने को मना नही करता हूं; पर यह कहो, किस आशा से तुम वहां जाते हो?'

'आशा क्या है? यो ही जी बहलाने को।'

'जी बहलाने? मेरा तो जी नही बहला। मै भी जी बहलाना चाहता हूं।'

चुन्नी बाबू कुछ देर तक उनके मुख की ओर देखते रहे। संभवत: उनके मुख से उनके मन के भाव को जानने की चेष्टा करते थे। फिर कहा–'देवदास, तुम्हे क्या हुआ है, साफ–साफ कहो?'

'कुछ भी नही हुआ है।'

'नही कहोगे?'

चुन्नीलाल ने बहुत देर बाद नीचा सिर किये हुए कहा–'देवदास मेरी एक बात रखोगे?'

'क्या?'

'वहां पर तुमको एक बार और चलना होगा? मैने वचन दिया है।'

'जहां उस दिन गया था?'

'हां।'

'वहां पर तुमको एक आर और चलना होगा? मैने वचन दिया है।'

'जहां उस दिन गया था?'

'हां।'

'छि:! वहां मुझे अच्छा नही लगता।'

'जिससे अच्छा लगेगा, मै वही करूंगा।'

देवदास अन्यमनस्क की भांति कुछ देर चुप रहे; फिर कहा–'अच्छा चलो, मै चलूंगा।'

अवनति की एक सीढ़ी नीचे उतरकर चुन्नीलाल न जाने कहां चले गये। अकेले देवदास ही चंद्रमुखी

के घर के नीचे के खंड मे बैठकर शराब पी रहे है। पास ही चंद्रमुखी विषण्ण-मुख से बैठी हुई देख रही है। उसने कहा-'देवदास, अब मत पियो।'

देवदास ने शराब का ग्लास नीचे रखकर भौ चढ़ाकर कहा-'क्यो?'

'अभी थोड़े ही दिन से शराब नही पीता हूं। यहां रहने के लिए शराब पीता हूं।'

यह बात चंद्रमुखी कई बार सुन चुकी है। दो-एक बार उसने सोचा कि कही दीवाल से टकराकर वे लहू की नदी बहाकर मर न जाये। देवदास को वह प्यार करती थी। देवदास ने शराब के ग्लास को ऊपर के उछाल दिया, कौच के पांव से लगकर चह चूर-चूर हो गया। फिर तकिये के सहारे लेटकर लड़खड़ाती हुई जबान से कहा-'मुझमे उठने का बल नही है, इसी से यहां पड़ा रहता हूं, ज्ञान नही है, इसी से तुम्हारे मुख की ओर देखकर बात करता हूं, चंद...र...तब अज्ञानता नही रहती, थोड़ा-सा ज्ञान रहता है। तुम्हे छू नही सकता, मुझे बड़ी घृणा होती है।'

चंद्रमुखी आंख निकालकर धीरे-धीरे कहा-'देवदास, यहां कितने ही आदमी आते है, किंतु वे लोग शराब छूते तक नही।'

देवदास आंख निकालकर उठ बैठे। कुछ झूमते हुए इधर-उधर हाथ फेककर कहा-'छूते नही? मेरे पास बंदूक होती तो गोली मार देता वे लोग मुझसे भी अधिक पापिष्ठ है, चंद्रमुखी!'

कुछ देर सोचने लगे; फिर कहा-'यदि कभी शराब का पीना छोड़ दूं-यद्यपि छोडूगा नही-तो फिर यहां कभी न आऊंगा। मुझे उपाय मालूम है; पर उन लोगो का क्या होगा?'

थोड़ा रूककर फिर कहने लगे-'बड़े दुख से शराब को अपनाया है। मेरी विपद और दुख की साथिन! अब तुझे कभी नही छोड़ सकता।' देवदास तकिये के ऊपर मुंह रगड़ने लगे। चंद्रमुखी ने चटपट पास आकर मुख उठा लिया। देवदास ने भौ चढ़ाकर कहा-'छिः, छूना नही, अभी मुझमे ज्ञान है। चंद्रमुखी, तुम नही जानती-केवल मै जानता हूं कि मै तुमसे कितनी घृणा करता हूं। सर्वदा घृणा करूंगा-तब भी आऊंगा, तब भी बैठूंगा, तब भी बाते करूंगा। इसे छोड़ दूसरा उपाय नही है। इसे क्या तुम लोग कोई समझ सकती हो? हा-हा! लोग पाप अंधेरे मे करते है, और मै यहां मतवाला हूं-ऐसा उपयुक्त स्थान जगत मे और कहां है? और तुम लोग....'

देवदास ने दृष्टि ठीक कर कुछ देर तक उसके विषण्ण मुख की ओर देखकर कहा-'आहा! सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति! लांछना, भर्त्सना, अपमान, अत्याचार, उपद्रव इस सबको स्त्री सह सकती है-तुम्ही इसका उदाहरण हो!'

फिर चित होकर गए धीरे-धीरे कहने लगे-'चंद्रमुखी कहती है कि वह मुझे बहुत प्यार करती है। मै यह नही चाहता-नही चाहता-नही चाहता-लोग थियेटर करते है, मुख में चूना और कालिख पोतते है-भिक्षा मांगते है-राजा बनते है-प्यार करते है, कितनी ही प्यार की बाते करते है-कितना रोते है-मानो सब ठीक है, सत्य है! मेरी चंद्रमुखी थियेटर करती है, मै देखता हूं। किंतु वह जो बहुत याद आती है, क्षण भर मे सब हो गया। वह कहां चली गई-और किस रास्ते से मै आया हूं? अब एक सर्व जीवनव्यापी मस्त अभिनय आरंभ हुआ है, एक घोर तवाला-और यही एक-होने दो, हो-हर्ज क्या? आशा नही, है वही भरोसा है-सुख भी नही, साध भी नही-वाह! बहुत अच्छा!'

इसके बाद देवदास करवट बदलकर न जाने क्यो बक-झक करने लगे। चंद्रमुखी उन्हे नही समझ

सकी। थोड़ी देर मे देवदास सो गये। चंद्रमुखी उनके पास आकर बैठी। आंचल भिगोकर मुख पोछ दिया और भीगे हुए तकिये को बदल दिया। एक पंख लेकर कुछ देर हवा की, बहुत देर तक नीचा सिर किये बैठी रही। तब रात के एक बज गये थे, वह दीपक बुझा कर द्वार बंद कर दूसरे कमरे मे चली गयी।

12

दोनो भाई–द्विजदास और देवदास–तथा गांव के बहुत–से लोग जमीदार मुखोपाध्याय की अंतेष्टि–क्रिया समाप्त कर घर लौट आये। द्विजदास चिल्ला–चिल्लाकर रोते–रोते पागल की भांति सो गये, गांव के पांच–पांच, छः–छः आदमी उनको पकड़कर रख नही सकते थे और देवदास शांत भाव से खंभे को पास बैठे थे। मुख मे एक शब्द नही था, आंखो मे एक बिंदु जल नही था, कोई उनको पकड़ने भी नही जाता था, कोई सान्त्वना भी नही देता था। केवल मधुसूदन घोष ने एक बार पास आकर कहा–'भाई, यह सब ईश्वर के अधीन की बात है। इसमे....।'

देवदास ने द्विजदास की ओर हाथ से दिखाकर कहा–'वहां...'

घोष महाशय ने अप्रतिभ होकर कहा–'हां–हां, उनको तो बहुत शोक...।'

इत्यादि कहते–कहते चले गये। और कोई पास नही आया। दोपहर बीतने पर देवदास मूर्च्छिता माता के पांव के पास जाकर बैठे। वहां पर बहुत–सी स्त्रियां उनको घेरकर बैठी थी। पार्वती की दादी भी उन्ही मे बैठी थी। टूटे–टूटे स्वर से शोकार्त विधवा माता से कहा–'बहू, देखो, देवदास आया है।' देवदास ने बुलाया–'मां!'

उन्होने केवल एक बार देखकर कहा–'देवदास!' फिर डबडबायी हुई आंखो से झर–झर आंसू गिरने लगे। स्त्रियां भी चिल्ला उठी। देवदास कुछ देर तक माता के चरणों मे अपना मुख ढके रहे, फिर उठकर चले गये–पिता के सोने के कमरे मे। आंखो मे जल नही था। मुख गंभीर तथा शांत था। लाल–लाल आंखो को ऊपर चढ़ाये हुए जाकर भूमि पर बैठ गये। उस मूर्ति को यदि कोई देखता तो संभवतः भयभीत हो जाता। दोनो कनपटियां फूली हुई थी। बड़े–बड़े रूखे केश ऊपर की ओर खड़े थे। तपाये हुए सोने के समान शरीर का रंग काला पड़ गया। कलकत्ता के जघन्य अत्याचार मे रातो का दीर्घ जागरण हुआ था–और उस पर पिता की मृत्यु हुई। एक वर्ष पहले अगर उनको कोई देखे होता; तो संभवतः एकाएक को पहचान न सकता। कुछ देर के बाद पार्वती की माता उन्हे ढूंढती हुई दरवाजा ठेलकर भीतर आई और पुकारा–'देवदास!'

'क्या है छोटी चाची?'

'ऐसा करने से तो नही चलेगा।'

देवदास ने उनके मुंह की ओर देखकर कहा–'क्या करता हूं चाची?'

चाची सब समझती थी, किंतु कह नही सकी। देवदास के सिर पर हाथ फेरते–फेरते कहा–'देवता–मेरा!'

'क्या चाची?'

'देवता–'

इस बार देवदास ने उसकी गोद मे अपना मुख छिपा लिया, आंखो से दो बूंद गरम–गरम आंसू गिर पड़े।

शोकार्त परिवार की दिन भी किसी भांति बीता। नियमित रूप से प्रभावित हुआ, रोना–धोना बहुत कम हो गया। द्विजदास धीरे–धीरे अपने आपे मे आये। उनकी माता भी कुछ संभल कर बैठी। आंख पोछते–पोछते आवश्यक काम करने लगी। दो दिन बाद द्विजदास ने देवदास को बुलाकर कहा–देवदास, पिता के श्राद्व–कर्म के लिए कितना रुपया खर्च करना उचित है?'

देवदास ने भाई के मुख की ओर देखकर कहा–'जो आप उचित समझे, करे।'

'नही भाई, केवल मेरे ही उचित समझने से काम नही चलेगा, अब तुम भी बड़े हुए तुम्हारी सम्मति भी लेना आवश्यक है।'

देवदास ने पूछा–'कितना नकद रुपया है।'

'बाबूजी की तहवील मे डेढ़ लाख रुपया जमा है। मेरी सम्मति से दस हजार रुपये खर्च काफी होगा, क्या कहते हो?'

'मुझे कितना मिलेगा?'

द्विजदास ने कुछ इधर–उधर करके कहा–'तुम्हे भी आधा मिलेगा, दस हजार खर्च होने से सत्तर हजार तुम्हे और सत्तर हजार मुझे मिलेगा।'

'मां नकद रुपया लेकर क्या करेगी? वे तो घर की मालकिन ही है। हम लोग उनका खर्च संभालेगे।'

देवदास ने कुछ सोचकर कहा–'मेरी सम्मति है कि आपके भग से पांच हजार रुपया खर्च हो और मेरे भाग से पच्चीस हजार रुपया खर्च हो, बाकी पच्चीस हजार मां के नाम जमा रहेगा। आपकी क्या सम्मति है?'

पहले द्विजदास कुछ लज्जित हुए। फिर कहा–'अच्छी बात है। किंतु यह तो जानते ही हो कि मेरे स्त्री–पुत्र और कन्या है। उनके यज्ञोपवीत, विवाह आदि मे बहुत खर्च पड़ेगा। इसलिए यही सम्मति ठीक है।' फिर कुछ ठहर कर कहा–'तो क्या जरा–सी इसकी लिखा–पढ़ी कर दोगे?'

'लिखने–पढ़ने का क्या काम है? यह काम अच्छा नही मालूम होगा। मेरी इच्छा है कि रुपये पैसे की बात इस समय छिपी–छिपाई रहे।'

'तो अच्छी बात है; किंतु क्या जानते हो भाई...?'

'अच्छा मै लिखे देता हूं।' उसी दिन देवदास ने लिख–पढ़ दिया।

दूसरे दिन दोपहर के समय देवदास सीढ़ी से नीचे उतर रहे थे। बीच मे पार्वती को देखकर रुक गए। पार्वती ने मुख की ओर देखा–देखकर पहचानते हुए उसे क्लेश हो रहा था। देवदास ने गंभीर और शांत मुख से आकर कहा–'कब आयी पार्वती?'

वही कंठ–स्वर आज तन वर्ष बाद सुना। सिर नीचा किये हुए पार्वती ने कहा–'आज सुबह आयी।'

'बहुत दिन से भेट नही हुई अच्छी तरह से तो रही?'

पार्वती सिर नीचा किये रही।

'चौधरी महाशय अच्छी तरह से है? लड़के–लड़की सब अच्छी तरह से है?'

'सब अच्छी तरह से है।' पार्वती ने एक बार मुख की ओर देखा, पर एक भी बात पूछ नही सकी वे

कैसे है, क्या करते है, इत्यादि वह कुछ भी पूछ नही सकी।

देवदास ने पूछा–'अभी तो यहां कुछ दिन रहना होगा?'

'हां।'

'तब फिर क्या'–कह कर देवदास चले।

श्राद्ध समाप्त हो गया। उसका वर्णन करने मे बहुत कुछ लिखना पड़ेगा, इसी से उसके कहने की आवश्यकता नही है। श्राद्ध के दूसरे दिन पार्वती ने धर्मदास को अकेले मे बुलाकर उसके हाथ मे एक सोने का हार देकर कहा–'धर्म, अपनी कन्या को यह पहना देना।'

धर्मदास ने मुंह की ओर देखकर आर्द्र नेत्र और करूण कंठ-स्वर से कहा–'अहा! तुमको बहुत दिनो से नही देखा, सब कुशल तो है?'

'सब कुशल है। तुम्हारी लड़की-लड़के तो अच्छे है?'

'हां पत्तों, सब अच्छे हैं।'

'तुम अच्छे हो?'

इस बार दीर्घ नि:श्वास खीचकर धर्मदास ने कहा–'क्या अच्छा हूं? अब यह जीवन भार-सा मालूम होता है–मालिक ही चले गये...।' धर्मदास शोक के आवेग मे कुछ और कहना चाहता था, किंतु पार्वती ने बाधा दी। इस सब बातो को सुनने के लिए उसने हार नही दिया था।

पार्वती ने कहा–'यह क्यो धर्मदास, तुम्हारे जाने से देव दादा को कौन देखेगा?'

धर्मदास ने माथा ठोककर कहा–'जब छोटे लड़के थे, तब देखने की जरूरत थी। अब नही देखने से ही अच्छा है।'

पार्वती ने और पास आकर कहा–'धर्म, एक बात सच-सच बताओगें?'

'क्यो नही बताऊंगा, पत्तो?'

'तब सच-सच कहो कि देवदास इस समय अभी क्या कर रहे है?'

'मेरा सिर कर रहे है, और क्या करेगे?'

'धर्मदास, साफ-साफ क्यो नही कहते?'

धर्मदास ने फिर सिर पीटकर कहा–'साफ-साऊ क्या कहूं? भला यह कुछ कहने की बात है। अब मालिक नही है। देवदास के हाथ अगाध रुपया लग गया है, अब क्या रक्षा हो सकेगी?'

पार्वती का मुख एकबारगी मलिन पड़ गया। उसने आभास और संकेत से कुछ सुना था। दुखित होकर पूछा–'क्या कहते हो धर्मदास?' वह मनोरमा के पत्रो से जब कोई समाचार पाती थी तो उस पर विश्वास नही करती थी। धर्मदास सिर नीचा करके कहने लगा–'खाना नही, पीना नही, सोना नही, केवल बोतल पर बोतल शराब, तीन-तीन, चार-चार दिन तक न जाने कहां रहते है, कुछ पता नही। कितने ही रुपये फूंक दिए। सुनता हूं, कई हजार रुपये का गहना बनवा दिया।'

पार्वती सिर से पैर तक सिहर उठी–'धर्मदास, यह क्या कहते हो? क्या यह सब सच है?'

धर्मदास ने अपने मन मे ही कहा–शायद तुम्हारी बात सुने, तुम एक बार मनाकर देखो। कैसा शरीर था, कैसा हो गया? ऐसे असंयम और अत्याचार से कितने दिन जिऐंगे? किससे यह बात कहूं मां, बाप, भाई से ऐसी बात नही कही जाती। धर्मदास ने फिर सिर ठोक कर कहा–'इच्छा होती है, जहर खाकर मर

जाऊं पत्तों, अब आगे जीने की साध नही है।'

पार्वती उठकर चली गई। नारायण बाबू के मरने का समाचार पाकर वह चली आई थी। सोचा था, इस विपत्ति के समय देवदास के पास जाना आवश्यक है। किंतु उसके परमप्रिय देवदास की यह अवस्था है! कितनी ही बाते उसके मन मे उठने लगी, जिनका अंत नही। जितना धिक्कार उसने देवदास को दिया, उसका हजार गुना अपने को दिया। हजार बार उसके मन मे उठा कि क्या उसके होने पर वह ऐसे बिगड़ सकते? पहले ही उसने अपने पांव मे आप कुठार मारा, किंतु वह कुठार उसके सिर पर गिरा। उसके देव दादा ऐसे हो रहे है।-इस प्रकार नष्ट हो रहे है, और वह दूसरे की गृहस्थी के बनाने मे लगी हुई है, दूसरे को अपना समझकर नित्य अन्न बांट रही है, और उसके सर्वस्व-आज भूखो मर रहे है! पार्वती ने प्रतिज्ञा की आज वह देवदास के पांव में माथा पटक कर प्राण त्याग देगी।

अभी भी संध्या होने मे कुछ देर है। पार्वती ने देवदास के कमरे मे प्रवेश किया। देवदास चारपाई पर बैठे हुए हिसाब देख रहे थे, इधर देखा-पार्वती धीरे-धीरे किवाड़ बंद कर फर्श पर बैठ गई। देवदास ने सिर उठाकर, हंसकर उसकी ओर देखा, उनका मुख विषण्ण, किंतु शांत था। हठात कौतुक से पूछा-'यदि मै अपवाद उठाऊं तो?'

पार्वती ने अपनी सलज्ज, श्याम कमलवत दोनो आंखो से एक बार उनकी ओर देखा, फिर नजर नीची कर ली। देवदास की इस बात ने भली-भांति जता दिया कि वह बात उनके हृदय मे आजन्म के लिए अंकित हो गई है। वह देवदास से कितनी ही बाते कहने के लिए आयी थी, किंतु सब भूल गई, एक भी बात न कह सकी। देवदास ने फिर हंसकर कहा-'समझता हूं, समझता हूं! लज्जा लगती है न?' तब भी पार्वती कोई बात न कह सकी। देवदास ने कहा-'इसमे लज्जा की क्या बात है? हम तुम दोनो ही लड़कपन मे बराबर एक साथ उठते-बैठते और खेलते थे। इसी बीच मे एक गड़बड़ी हो गई। क्रोध करके जो तुम्हारे जी मे आया कहा, और मैने भी तुम्हारे सिर मे यह दाग दे दिया। कैसा हुआ?'

देवदास की बात मे श्लेष व विद्रूप का लेश भी नही था; हंसते-ही-हंसते पहले की बीती दुख की कहानी कह सुनाई। पार्वती का हृदय भी सुनकर फटने लगा। मुंह मे आंचल देकर एक गहरी सांस खीचकर मन-ही-मन कहा-देव दादा, यह दाग ही मेरे ढाढस का कारण है, एकमात्र यही मेरा साथी है। तुम मुझे प्यार करते थे, इसी से दया करके, हम लोगो के बाल्य-इतिहास को इस रूप मे, इस ललाट मे अंकित कर दिया है। इससे मुझे लज्जा नही, कलंक नही, यह मेरे गौरव का चिह्न है।

'पत्तो!'

मुख से आंचल न हटाकर ही पार्वती ने कहा-'क्या?'

'तुम्हारे ऊपर मुझे बड़ा क्रोध आता है।'

इस बार देवदास का कंठ-स्वर विकृत हो गया-'बाबूजी नही है, आज मेरे विपत्ति का समय है, किंतु तुम्हारे रहने से कोई चिंता न रहती! बड़ी भाभी को जानती ही हो, भाई साहब का स्वभाव भी तुमसे कुछ छिपा नही है; और तुम्ही सोचो, मां को इस समय लेकर मै क्या करूं, और मेरा कुछ ठिकाना ही नही कि क्या होगा? तुम्हारे रहने से मै सब-कुछ तुम्हारे हाथ मे सौपकर निश्चिंत हो जाता-'क्यो पत्तो?'

पार्वती फफककर रो पड़ी। देवदास ने कहा-'रोती हो क्या? अब और कुछ नही कहूंगा।'

पार्वती ने आंख पोछते-पोछते कहा-'पत्तो, अब तो तुम खूब पक्की घरनी हो गई हो न?'

घूंघट के भीतर-ही-भीतर होठ चबाकर, मन-ही-मन उसने कहा-घरनी क्या हुई हूं! क्या सेमल का फूल कभी देव-सेवा मे लगता है?

देवदास ने हंसते-हंसते कहा-'बड़ी हंसी आती है! तुम कितनी छोटी थी और अब कितनी बड़ हो गईं। बड़ा मकान, बड़ी जमीदारी है, बड़े-बड़े लड़की-लड़के है और सबसे बड़े चौधरी जी, क्यो पत्तो?'

चौधरी जी पार्वती के लिए बड़ी हंसी की चीज है; उनके ध्यान मात्र आने से उसे हंसी आ जाती है। इतने कष्ट मे भी इसी से उसे हंसी आ गई। देवदास ने बनावटी गंभीरता से कहा-'क्या एक उपकार कर सकती हो?'

पार्वती ने मुख उठाकर कहा-'क्या?'

'तुम्हारे गांव मे कोई अच्छी लड़की मिल सकती है?'

पार्वती ने खांसकर कहा-'अच्छी लड़की! क्या करोगे?'

'मिलने पर विवाह करूंगा। एक बार गृहस्थी बनने की साध होती है।'

पार्वती ने गंभीरतापूर्वक पूछा-'खूब सुंदरी न?'

'हां, तुम्हारी तरह।'

'और खूब शांत?'

'नही, खूब शांत से काम नही है; वरन् कुछ दुष्ट हो, तुम्हारी तरह मुझसे झगड़ा कर सके।'

पार्वती ने मन-ही-मन कहा-यह तो कोई नही कर सकेगी देव दादा, क्योकि इसके लिए मेरे समान प्रेम चाहिए। प्रकट मे कहा-'मै अभागिन क्या हूं, मेरे ऐसी न जाने कितनी हजार तुम्हारे पांव की धूलि लेक अपने को धन्य मानेगी?'

देवदास ने मजाक से हंसकर कहा-'क्या अभी एक ऐसी ला सकती हो?'

'देव दादा, क्या सचमुच विवाह करोगे?'

'वैसा ही, जैसा मैने बतलाया है।'

केवल यही खोलकर नही कहा कि उसे छोड़ इस संसार मे उनके जीवन की कोई सहवासिनी नही हो सकती!

'देवदास, एक बात बताओगे?'

'क्या?'

पार्वती ने अपने के बहुत संभालकर कहा-'तुमने शराब पीना कैसे सीखा?'

देवदास ने हंसकर कहा-'पीना भी क्या कही सीखना होता है?'

'यह नही तो अभ्यास कैसे किया?'

'किसने कहा-धर्मदास ने?'

'कोई भी कहे; क्या यह बात सच है?'

देवदास ने छिपाया नही, कहा-'कुछ है?'

पार्वती ने कुछ देर स्तब्ध रहने के बाद पूछा-'और कितने हजार रुपये का गहना गढ़ा दिया है?'

देवदास ने गंभीरता से कहा-'दिया नही है; गढ़ाकर रखा है। तुम लोगो?'

पार्वती ने हाथ फैलाकर कहा–‘दो, यह देखो, मुझ पर एक भी गहना नही है।’

‘चौधरी जी ने तुम्हे नही दिया?’

‘दिया था; पर मैने सब उनकी बड़ी लड़की को दे दिया।’

‘जान पड़ता है अब तुम्हे जरूरत नही है।’

पार्वती ने मुख हिलाकर सिर नीचा कर लिया। देवदास की आंखो मे आंसू भर आया। देवदास ने मन–ही–मन सोचा कि साधारण दु:ख से स्त्रियां अपने गहने खोलकर नही देती। किंतु आंख से निकलते हुए आंसुओ को रोककर धीरे–धीरे कहा–‘झूठी बात है; किसी स्त्री से मैने प्रेम नही किया। किसी को मैने गहना नही दिया।’

पार्वती ने दीर्घ नि:श्वास फेककर मन–ही–मन कहा–ऐसा ही मुझे भी विश्वास है।

कुछ देर तक दोनो ही चुप रहे। फिर पार्वती ने कहा–‘किंतु प्रतिज्ञा करो कि अब शराब नही पीऊंगा।’

‘यह नही कर सकता। तुम क्या प्रतिज्ञा कर सकती हो कि तुम मुझे भुला दोगी?’

पार्वती ने कुछ नही कहा। इसी समय बाहर से संध्या की शंख–ध्वनि हुई। देवदास ने खिड़की से बाहर देखकर कहा–‘संध्या हो गई है, अब घर जाओ पत्तो!’

‘मै नही जाऊंगी, तुम प्रतिज्ञा करो।’

‘क्यो, मै नही कर सकता।’

‘क्यो नही कर सकते?’

‘क्या सभी सब कामो को कर सकते है?’

‘इच्छा करने से अवश्य कर सकते है।’

‘तुम मेरे साथ आज रात मे भाग सकती हो?’

पार्वती का हृदय–स्पंदन सहसा बंद हो गया। अनजाने मे धीरे से निकल गया–‘यह क्या हो सकता है?’

देवदास ने जरा चारपाई के ऊपर बैठक कहा–‘पार्वती, किवाड़ खोल दो।’

देवदास खड़े होकर धीमे भाव से कहने लगे–‘पत्तो, क्या जोर देकर प्रतिज्ञा कराना अच्छा है? उससे क्या कोई विशेष लाभ है? आज की हुई प्रतिज्ञा कल शायद न रहेगी। क्यो मुझे झूठा बनाती हो?’
और भी कुछ क्षण यो ही नि:शब्द बीत गये। इसी समय न जाने किस घर मे टन–टन करके नौ बजा। देवदास भाव से कहने लगे–‘पत्तो, द्वार खोल दो।’

पार्वती ने कुछ नही कहा।

‘जा पत्तो!’

‘मै किसी तरह नही जाऊंगी।’–कहकर पार्वती अकस्मात पछाड़ खाकर गिर पड़ी। बहुत देर तक फूट–फूटकर रोती रही। कमरे के भीतर इस समय गाढ़ा अन्धकार था, कुछ दिखायी नही पड़ता था। देवदास ने केवल अनुमान से समझा कि पार्वती जमीन मे पड़ी रो रही है, धीरे–धीरे बुलाया–‘पत्तो!’

‘देव दादा, मै मर भी जाऊंगी, किन्तु कभी तुम्हारी सेवा नही कर सकी, यह मेरे आजन्म की साध है।’

अंधेरे मे आंख पोछते–पोछते देवदास ने कहा–‘वह भी समय आयेगा।’

'तब मेरे साथ चलो। यहां पर तुम्हे कोई देखने वाला नही है।'

'तुम्हारे मकान पर चलूंगा तो खूब सेवा करोगी?'

'यह मेरे बचपन की ही साध है। हे स्वर्ग के देवता! मेरी इस साध को पूर्ण करो इसके बाद यदि मर भी जाऊं तो भी दुख नही है।'

इस बार देवदास की आंखो मे पानी भर आया। पार्वती ने फिर कहा–'देवदास, मेरे यहां चलो!'

देवदास ने आंखे पोछकर कहा–'अच्छा चलूंगा।'

'मेरे सिर पर हाथ रखकर कहो कि चलोगे।'

देवदास ने अनुमान से पार्वती का पांव छूकर कहा–'यह बात मै कभी नही भूलूंगा। अगर मेरे जाने से ही तुम्हारा दुख दूर हो, तो मै अवश्य आऊंगा। मरने के पहले भी मुझे यह बात याद रहेगी।'

पिता की मृत्यु के बाद धीरे–धीरे छः महीने बीत गये। देवदास घर में एकदम ऊब गये। सुख नही, शान्ति नही, उस पर एक ही तरह की जीवनचर्या से मन बिल्कुल विरक्त हो चला। तिस पर पार्वती की चिन्ता से चित और भी अव्यवस्थित हो रहा था; फिर आजकल तो उसके एक–एक काम, एक–एक हावभाव के चित्र हर समय आंखो के सामने नाचा करते थे। उस पर भाई–भौजाई के उदासीन व्यवहारो ने देवदास के सन्ताप को और भी दूना कर दिया था।

माता की अवस्था भी देवदास की ही तरह थी। स्वामी की मृत्यु के साथ–ही–साथ उनके सारे सुखो का लोप हो गया। पराधीन होकर इस मकान मे रहना उनके लिए भी धीरे–धीरे असह्य होने लगा। आज कई दिनों से वे काशीवास का विचार कर रही है। केवल देवदास के अविवाहित होने के कारण वे अभी नही जा सकती है। जब–जब यही कहती है कि, 'देवदास, अब तुम विवाह कर लो, मेरी साध पूरी हो जाय।' किन्तु यह कब सम्भव था! एक तो पिता की अभी वर्षी नही हुई, दूसरे अभी कोई इच्छानुकूल कन्या नही मिली। इसी से माता आजकल कभी–कभी दुखित हो जाया करती है कि यदि उस समय पार्वती का विवाह हो गया होता, तो अच्छा होता। एक दिन उन्होने देवदास को बुलाकर कहा–'अब मै यहां नही रहना चाहती, कुछ दिनो के लिए काशी जाके रहने की इच्छा है।' देवदास की भी यही इच्छा थी, कहा–'मेरी भी यही सम्मति है। छः महीने के बाद लौट आना।'

'ऐसा ही करो। फिर लौट के आने पर उनकी क्रिया–कर्म हो जाने के बाद तुम्हारा विवाह कर, तुम्हे गृहस्थ बना देख, मै फिर जाके काशीवास करूंगी।'

देवदास सहमत होकर माता को कुछ दिनो के लिए काशी पहुंचाकर कलकत्ता चले गये। कलकत्ता आकर देवदास ने तीन–चार दिनो तक चुन्नीलाल को ढूंढा। वे नही मिले, उसे मैस को छोड़कर किसी दूसरी जगह चले गये थे। एक दिन संध्या के समय देवदास को चन्द्रमुखी की बात याद आयी। एक बार देख आना अच्छा होगा। इतने दिनो तक कुछ भी स्मरण नही आया था। इससे कुछ लज्जा–सी मालूम हुई। एक किराये की गाड़ी करके चले। कुछ संध्या हो जाने पर चन्द्रमुखी के मकान के सामने गाड़ी आ खड़ी हुई। बहुत देर तक बुलाने–चिल्लाने के बाद भीतर से स्त्री के कंठ–स्वर मे उत्तर मिला–'यहां नही है।' सामने एक बिजली की रोशनी का खम्भा खड़ा था, देवदास ने उसके पास होकर कहा –'कह सकती हो, वह कहां गयी है?' खिड़की खोलकर उसने कुछ क्षण देखने के बाद कहा–'क्या आप देवदास है?'

'हा।'

'खड़े रहिये–दरवाजा खोलती हूं।' दरवाजा खोलकर उसने कहा–'आइये!' कंठ–स्वर कुछ परिचित–सा जान पड़ा, किन्तु फिर भी पहचान नही सके। थोड़ा अन्धकार भी हो चला था। सन्देह से कहा–'चन्द्रमुखी कहां रहती है, कुछ कह सकती हो?'

स्त्री ने मीठी हंसी हंसकर कहा–'हां, तुम ऊपर चलो।' इस बार देवदास ने पहचान लिया–'है! तुम्ही हो?'

'हां, मै ही हूं। देवदास, मुझे एकदम भूल गये?'

ऊपर जाकर देवदास ने देखा, चन्द्रमुखी एक काले किनारे की मैली धोती पहने है, हाथ मे केवल दो कड़ो को छोड़, शरीर पर कोई आभूषण नही है, सिर के केश इधर–उधर बिखरे हुए है, विस्मित होकर देवदास ने पूछा–'तुम्ही?' अच्छी तरह से देखा, चन्द्रमुखी पहले की अपेक्षा बहुत दुबली हो गयी है।

देवदास ने पूछा–'तुम क्या बीमार थी?'

'कोई शारीरिक बीमारी नही थी, तुम अच्छी तरह से बैठो।'

देवदास ने चारपाई पर बैठकर देखा, घर मे पहले की अपेक्षा आकाश–जमीन का अन्तर हो गया है। गृहस्वामिनी की भांति उसकी दुर्दशा की भी सीमा नही थी। एक भी सामान नही था। अलमारी, टेबिल, कुर्सी आदि सबके स्थान खाली पड़े है। केवल एक शैया पड़ी थी, चादर मैली थी। दीवाल पर से चित्र हटा दिये गये थे। लोहे की कांटियां अब भी गड़ी हुई थी। दो–एक लाल फीते भी इधर–उधर लटके हुए थे। पहले की वह घड़ी भी बाकेट पर रखी हुई थी, किन्तु निःशब्द थी। आस–पास मकड़ों ने अपनी इच्छानुकूल जाला बुन रखा था। एक कोने मे एक तेल का दीया धीमी–धीमी रोशनी फैला रहा था, उसी के सहारे से देवदास ने घर की इस नयी सजावट को देखा। कुछ विस्मित और कुछ क्षुब्ध होकर कहा–'दुर्दशा! तुमसे किसने कहा? मेरा तो भाग्य प्रसन्न हुआ है।'

देवदास समझ नही सके कहा–'तुम्हारे सब गहने क्या हुए?'

'बेच डाले।'

'माल–असबाब?'

'वह भी बेच डाला।'

'घर की तस्वीरे भी बेच डाली?'

इस बार चन्द्रमुखी ने हंसकर सामने के एक मकान को दिखाकर कहा–'उस मकान के मालिक के हाथ बेच दी।'

देवदास ने कुछ देर तक उसके मुंह की ओर देखकर कहा–'चुन्नी बाबू कहां है?'

'नही कह सकती। दो महीने हुए, लड़–झगड़कर चले गये, फिर तब से नही आये।'

देवदास को अब और आश्चर्य हुआ। पूछा–'झगड़ा क्यो हुआ?'

चन्द्रमुखी ने कहा–'क्या झगड़ा नही होता?'

'होता है,पर क्यो?'

'दलाली करने आये थे, इसी से हटा दिया।'

'किसकी दलाली?'

चन्द्रमुखी ने हंसकर कहा–'पट्टू की।' फिर कहा–'तुम नही समझते? एक बड़े आदमी को पकड़ लाये थे। महीने मे दो सौ रुपये, एक सेट गहना और दरवाजे के सामने रहने को एक सिपाही मिलता था, समझे!'

देवदास ने सब समझने के बाद हंसकर कहा–'वह सब एक भी तो नही देखता हूं।'

'रहते तब न देखते! मैने उन लोगो को हटा दिया।'

'उन लोगो का अपराध?'

'उन लोगो का अपराध कुछ ज्यादा नही था, पर मुझे अच्छा नही लगा।'

देवदास ने बहुत सोचकर कहा- 'उसी दिन से यहां और कोई नही आया?'

'नही। उस दिन से क्यो? तुम्हारे जाने के बाद से ही यहां कोई नही आता। सिर्फ बीच-बीच में चुन्नीलाल आ जाते थे, किन्तु दो मास से वी भी नही आते।'

देवदास बिछौने के ऊपर लेट गये। दूसरी ओर देखने लगे, बहुत देर तक चुप रहने के बाद धीरे से कहा–'चन्द्रमुखी, तब दुकानदारी सब उठा दी?'

'हां, दिवाला निकाल दिया।'

देवदास ने इस बात का उत्तर न देकर कहा–'लेकिन रोटी-पानी कैसे चलेगा?'

'इसीलिए तो जो कुछ गहना-पत्तर था, बेच दिया।'

'उसमे अब कितना बचा है?'

'ज्यादा नही, कोई आठ-नौ सौ रुपये होगे। उन्हे एक मोदी के पास रख दिया है, वह मुझे महीने मे बीस रुपये देता है।'

'बीस रुपये से तो पहले तुम्हारा काम नही चलता था?'

'नही, आज भी अच्छी तरह से नही चलता है। तीन महीने से महान का किराया बाकी है, इसी से इच्छा होती है कि इन दोनो कड़ो को बेचकर, सब पटाकर और कही चली जाऊं।'

'कहां जाओगी?'

'यह अभी निश्चय नही किया है। किसी सस्ते देश, गवंई-गांव मे जाऊंगी जिसमे बीस रुपये महीने मे निर्वाह हो जाय।'

'इतने दिन से क्यो नही गयी? अगर सचमुच ही तुम्हारा और कोई मतलब नही था तो फिर इतने दिन रहकर व्यर्थ कर्ज क्यो बढ़ाया?'

चन्द्रमुखी सिर नीचा करके कुछ सोचने लगी। उसके जीवन-भर मे बातचीत करने का यह पहला अवसर है। देवदास ने पूछा-चुप क्यो हो?'

चन्द्रमुखी ने शैया के एक ओर संकुचित भाव से बैठकर धीरे-ध्धीरे कहा–'क्रोध मत करना; जाने के पहले सोचा था कि तुमसे भेट कर लेना अच्छा होगा। आशा करती थी कि एक बार तुम आओगी। आज तुम आये हो, अब कल ही जाने का उद्योग करूंगी। पर कहा जाऊं, कुछ कह सकते हो?'

देवदास विस्मित होकर उठ बैठे; कहा–'सिर्फ मुझे देखने की आशा से रुकी थी। लेकिन क्यो?'

'एक ख्याल। तुम मुझसे बहुत घृणा करते थे। इतनी घृणा किसी ने मुझसे कभी नही की, शायद इसीलिए। तुम्हे अब याद है या नहीं, यह मैं नही कह सकती, पर मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि जिस

दिन तुम पहले-पहल हां पर आये थे, उसी दिन मेरी नजर तुम पर पड़ी। तुम धनी की सन्तान हो, यह मैं जानती थी; पर धन की आशा से मै तुम्हारी ओर नही खिंची थी। तुम्हारे पहले कितने ही लोग यहां पर आये और गये, पर किसी मे इतना तेज नही पाया। तुमने आने के साथ ही मुझे घायल किया; एक आयाचित, उपयुक्त, परन्तु अनुचित रूढ़ व्यवहार आरम्भ किया, घृणा से मुंह फेर लिया और अन्त मे तमाशे की तरह कुछ देकर चले गये। ये सब बाते क्या तुम्हारे ध्यान मे आती है?'

देवदास चुप रहे, चन्द्रमुखी फिर कहने लगी-'उसी दिन से मेरी तुम्हारे ऊपर नजर पड़ी। मै न तुमसे प्रेम करती और न घृणा करती थी, एक नयी चीज को देखकर जैसे मन में हमेशा ध्यान बना रहता है, तुमको भी देखकर उसी तरह किसी भांति नही भूल सकी। तुम्हारे आने पर बड़े भय और सतर्क के साथ रहती थी, पर न आने से कुछ अच्छा भी नहीं लगता था। फिर जाने कैसा मतिभम्र हुआ कि इन दोनो आंखो को सब ही चीजें एक-सी दीखने लगी। मैं पहले की अपेक्षा बिल्कुल बदल गयी, जो पहले थी वह अब नहीं रही। फिर तुमने शराब पीना शुरू किया; शराब से मुझे बड़ी घृणा है। किसी के मतवाला होने पर मुझे उस पर बड़ा क्रोध आता है। पर तुम्हारे मतवाला होने से क्रोध नही होता था, बल्कि बड़ा दुख होता था।'

यह कहकर चन्द्रमुखी ने देवदास के पांव पर हाथ रखकर डबडबायी हुई आंखो से कहा-'मै बहुत अधम हूं, मेरे अपराधो पर ध्यान नही देना। तुम जितनी ही बाते कहते थे और घृणा करते थे, मै उतनी ही तुम्हारे पास आना चाहती थी।' अन्त मे सो जाने पर-'रहने दो, ये बाते नही कहूंगी, नही तो क्रोध कर बैठोगे।' देवदास ने कुछ नही कहा, नयी तरह बातचीत से उसे कुछ वेदना पहुंचा रही थी। चन्द्रमुखी ने छिपा के आंख पोछकर कहा-'एक दिन तुमने कहा कि हम लोग कितना सहन करती है, लांछना, अपमान, जघन्य अत्याचार, उपद्रव की बाते! उसी दिन से मुझे बड़ा अभियान हुआ-'मैने सब बन्द कर दिया।'

देवदास ने बैठकर पूछा-'लेकिन यह जीवन कैसे कटेगा?'

चन्द्रमुखी ने कहा-'वह तो पहले ही कह चुकी।'

'और सोचो, यदि उसने तुम्हारा सब रुपया दाब रखा तो?'

चन्द्रमुखी इससे भयभीत नहीं हुई। शान्त-सहज भाव से कहा-'आश्चर्य नही, किन्तु इसे भी मैने सोच रखा है कि विपत्ति पड़ने पर तुमसे कुछ भीख मांग लूंगी।'

देवदास ने सोचकर कहा-'वह पीछे लेना। अभी और कही जाने का उद्योग करो।'

'कल ही करूंगी। कड़ा बेचकर एक बार मोदी से भेट करूंगी।'

देवदास ने पॉकेट से सौ-सौ रुपये के पांच नोट निकालकर तकिये के नीचे रखकर कहा-'कड़ा बेचो, सिर्फ मोदी के साथ भेट कर लेना। पर जाओगी कहां, किसी तीर्थ-स्थान मे?'

नही देवदास, तीर्थ और धर्म के ऊपर मेरी अधिक श्रद्धा नही है। कलकत्ता से अधिक दूर नहीं जाऊंगी। आस-ही-पास के किसी गांव मे जाकर रहूंगी।

'क्या किसी अच्छे घर मे दासी का काम करोगी?'

चन्द्रमुखी की आंखो मे फिर आंसू भर आये। पोछकर कहा-'इच्छा नही होती। स्वाधीन-भाव से स्वच्छन्द होकर रहूंगी। क्यो दुख करने जाऊं? शारीरिक दुख कभी उठाया नही है, अब भी नही उठा

सकूंगी। और अधिक खीचातानी करने से छिन्न-भिन्न हो जाऊंगी।'

देवदास ने विष्ण मुख से कुछ हंसकर कहा-'पर शहर के पास रहने से प्रलोभन मे पड़ सकती हो। मनुष्य के मन का विश्वास नही।'

इस बार चन्द्रमुखी का मुख खिल उठा। हंसकर कहा-'यह बात सच है, मनुष्य का विश्वास नही। पर मै प्रलोभन मे नही पड़ूंगी। स्त्रियो मे लोभ अधिक है-यह मानती हूं, पर जिस चीज का लोभ रहता है जब उसे ही इच्छापूर्वक छोड़ दिया है, तो फिर मेरे लिए कोई भय नही है। एकाएक अगर किसी झोक मे आकर छोड़ती, तब सावधान होना आवश्यक था, लेकिन इतने समय मे एक दिन भी तो पछतावा नही हुआ, मैं बड़े सुख से हूं।'

देवदास ने सिर हिलाकर कहा-'स्त्रियो का मन बड़ा चंचल, बड़ा अविश्वासी होता है।'

इस बार चन्द्रमुखी कुछ खिसककर एकदम पास मे आकर बैठी, हाथ पकड़कर कहा-'देवदास!' देवदास उसके मुंह की ओर देखते रहे। इस बार वे नही कह सके कि मुझे मत छुओ।

चन्द्रमुखी ने स्नेह से चक्षु विस्फारित कर, कुछ कम्पित कंठ से उनके हाथो को अपनी गोद मे खीचकर कहा-'आज अन्तिम दिन है, आज क्रोध मत करना। एक बात तुमसे पूछने की बड़ी लालसा है।'-यह कहकर कुछ देर देवदास के मुंह की ओर देखकर कहा-'पार्वती ने क्या तुम्हे बड़ी गहरी चोट पहुंचायी है?'

देवदास ने भ्रू-कुंचित कर कहा-'यह क्यो पूछती हो?'

चन्द्रमुखी विचलित नही हुई। शान्त और दृढ़ स्वर से कहा-'मुझे काम है। मै सच कहती हूं, तुम्हे दुख पहुंचने से मुझे भी दुख होता है। इसे छोड़ शायद मैं बहुत-सी बाते जानती हूं। बीच-बीच मे नशे के जोर मे तुम्हारे मुंह से अनेक ऐसी बाते सुनी है। फिर भी मुझे विश्वास नही होता कि पार्वती ने तुम्हे ठगा है; वरन् मन में उठता है कि तुमने अपने-आपको ठगा है। देवदास, मै तुमसे उम्र मे बड़ी हूं, इस संसार मे बहुत-कुछ देखा सुना है। मेरे मन मे क्या बात उठती है, जानते हो? मैं दृढ़ चित्त से कहती हूं कि इसमें तुम्हारी ही भूल है। मन मे आता है, चंचल और अस्थिर-चित्त कहकर स्त्रियो की जितनी निन्दा की जाती है, वे उतनी निन्दा के योग्य नही है। निन्दा करने वाले भी तुम्ही हो, प्रशंसा करने वाले भी तुम्ही हो। तुम लोगो के मन मे जो कुछ आता है, सहज ही कह देते हो। लेकिन वे ऐसा नही कर सकती। अपने मन की बात नही कर सकती। प्रकट करने पर भी जब लोग अच्छी तरह नही समझते; क्योकि बहुत अस्पष्ट होता है। तुम लोगो के तर्क के सामने वह दब जाता है। फिर वही निन्दा के मुंह पर स्पष्ट और स्पष्टतर हो उठती है।'

चन्द्रमुखी ने थोड़ा ठहरकर अपने कंठ-स्वर को और परिष्कृत करके कहा-'इस जीवन मे प्रेम का व्यवसाय बहुत दिनो तक किया है, लेकिन प्रेम केवल एक बार किया है। उस प्रेम का मूल्य बहुत बड़ा है, उससे अनेक शिक्षाएं मिलती है। जानते हो, प्रेम एक वस्तु है और रूप का मोह दूसरी। इन दोनो मे बड़ा गोलमाल है और पुरुष ही अधिक गोलमाल करते है। रूप का मोह तुम लोगो की अपेक्षा हम लोगो मे बहुत कम है, इसी से हम लोग तुम लोगों की तरह एकबारगी उन्मत्त नही हो उठती। तुम लोग जब आकर अपना प्रेम दिखलाते हो, अनेको प्रकार के भाव प्रकट करते हो, तब हम लोग चुप हो रहती है। कितनी ही बार तुम लोगो के मन को क्लेश देने में लज्जा मालूम होती है, दुख और संकोच होता

है। मुंह देखने से अगर घृणा भी होती है, तब भी अक्सर लज्जा से यह नही कह सकती कि मैं तुमको प्यार नही करती। फिर एक बाह्य प्रणय का अभिनय आरम्भ होता है; किसी दिन जब उसका अन्त हो जाता है तो पुरुष अस्थिर होकर कहते है कि कितनी विश्वासघातिनी है। तब सब लोग उसी बात को सुनते है और उसी पर विश्वास करने लग जाते है। हम लोग तब भी चुप रहती है। मन मे कितना ही क्लेश होता है, किन्तु उसे कौन देखने जाता है?' देवदास ने कुछ नही कहा। वह भी बहुत देर तक नि:शब्द मुंह की ओर देखती रही फिर कहा–'यदि कुछ होता है तो शायद थोड़ी–बहुत ममता उत्पन्न होती है, स्त्रियां मन मे सोचती है कि यही प्रेम है। शान्त–धीर भाव से गृहस्थी को काम–काज करती है। दुख के समय प्राणपण से सहायता करती है। जब तुम लोग खूब प्रशंसा करते हो, सब लोगो के मुख से कितनी ही बार धन्य–धन्य निकलता है, लेकिन उस समय तक उसका प्रेम का वर्ण–परिचय भी आरम्भ होता है। इसके बाद अगर किसी अशुभ मुहूर्त मे अपने हृदय की असह्य वेदना के कारण छटपटाती हुई द्वार के बाहर आकर खड़ी होती है तो तुम लोग चिल्लाकर कह उठते हो–'कलंकिनी! छि:! छि:!' अकस्मात देवदास चन्द्रमुखी के मुंह को हाथ से दबाकर कह उठे–'चन्द्रमुखी, यह क्या?' चन्द्रमुखी ने धीरे–धीरे हाथ हटाकर कहा–'डरो नही देवदास, मै तुम्हारी पार्वती की बात नही कहती हूं।' यह कहकर वह चुप हो रही। देवदास ने कुछ क्षण चुप रहकर अन्यमनस्क होकर कहा–'किन्तु कर्त्तव्य है, धर्म–अधर्म तो है?' चन्द्रमुखी ने कहा–'हां, वह तो है, और इसीलिए देवदास से वह सच्चा प्रेम करती और उसे सहन भी करती है; आन्तरिक प्रेम से जो सुख और तृप्ति मिलती है, उसे और बढ़ाने के लिए वह घर मे अशान्ति नही लाना चाहती। पर देवदास, मैं सच कहती हूं, पार्वती ने तुम्हे कुछ भी नही ठगा है, तुम्ही ने अपने–आपको ठगा है। आज इस बात को समझने की शक्ति तुममे नही है, यह बात मैं जानती हूं। अगर कभी समय आयेगा तो तुम देखोगे कि मै सच कहती थी।' देवदास की दोनो आंखो मे जल भर आया। वे दुखी होकर सोचने लगे कि क्या चन्द्रमुखी की बाते सच है? आंखो के आंसुओ को चन्द्रमुखी ने देखा, किन्तु पोछने की चेष्ट नही की। मन–ही–मन कहने लगी–तुम्हे मैने अनेको रूप में देखा है। इससे तुम्हारे मन की गति को मै भली–भांति जानती हूं। साधारण पुरुषो की भांति तुम मांगकर प्रेम प्रकाशित नही कर सकते। तब रूप की बात–रूप को कौन नहीं चाहता? किन्तु इसीलिए तुम अपने इतने तेज का, रूप के पांव मे आत्म–विसर्जन कर दोगे, यह बात विश्वास में नही आती। पार्वती है तो बड़ी रूपवती, लेकिन फिर भी यही विश्वास होता है कि पहले उसी ने प्रेम का द्वार खोला, पहले उसी ने प्रेमालाप प्रारम्भ किया।

मन–ही–मन कहते–कहते सहसा उसके मुख से अस्फुट स्वर से बाहर निकल पड़ा–'अपने को देखकर यह समझती हूं कि वह तुमको कितना प्यार करती होगी।'

देवदास ने चटपट बैठकर कहा–'क्या कहती हो?'

चन्द्रमुखी ने कहा–'कुछ नही। कहती थी कि वह तुम्हारा रूप देखकर नही भूल सकती। तुम्हारे रूप है, लेकिन उसमे भूल नही होती। इस तीव्र–रूक्ष रूप पर सबकी दृष्टि नही पड़ती। किन्तु जिसकी पड़ती है, उसकी दृष्टि फिर नहीं हट सकती।

यह कहकर एक दीर्घ नि:श्वास लेकर कहा–'तुममे न जाने कैसा एक आकर्षण है कि उसे जान सकता है, जिसने तुम्हे प्यार किया है। इस स्वर्ग के पाने की इच्छा करके फिर कौन मुड़ सकता है, ऐसी

स्त्री इस पृथ्वी पर कौन है?'

और कुछ क्षण नीरव रहने के बाद उसने मुख की ओर देखकर कहा–यह रूप सिर्फ चार दिन की चांदनी है। देखते–देखते ही इसका अन्त हो जाता है और चिता के साथ अग्नि मे भस्म होकर राख हो जाता है।'

देवदास ने विह्वल दृष्टि से चन्द्रमुखी के मुख की ओर देखकर कहा–'आज तुम यह सब क्या बक रही हो?'

चन्द्रमुखी ने मधुर हंसी हंसकर कहा–'इससे बढ़कर और कोई मन को उबाने वाली बात नही होती देवदास, कि जिसे हम प्यार न करे वही बलपूर्वक प्रेम की बाते सुनाए। लेकिन मै यह सिर्फ पार्वती के लिए वकालत करती हूं, अपने लिए नही।'

देवदास ने चलने को उद्दत होकर कहा–'अब मैं चलूंगा।'

'थोड़ा और बैठो। कभी तुमको संज्ञान नही पाया था–कभी इस तरह दोनो हाथ पकड़कर बातचीत नही कर सकी थी–यह कैसी तृप्ति है!'–कहकर वह हठात् हंस पड़ी।

देवदास ने आश्चर्य से पूछा–हंसी क्यो?'

'कुछ नही। सिर्फ एक पुरानी बात की याद आ गई। आज दस बरस की बात है, जब मै प्रेम के आवेश मे घर छोड़कर चली आई थी, तब मन में होता था कि कितना प्यार करूं–सम्भवत: उस समय प्राण भी दे सकती थी। फिर एक दिन एक तुच्छ गहन के लिए ऐसा झगड़ा हुआ कि फिर किसी का मुंह नही देखा, मन को यह कहकर संतोष दिया कि यह मुझे अच्छी तरह प्यार नही करते, नही तो क्या एक गहना न देते?'

चन्द्रमुखी एक बार फिर अपने मन में हंस उठी। दूसरे ही क्षण शान्त–गम्भीर मुख से धीरे–धीरे कहा–'भाड़ में जाये ऐसा गहना, तब क्या यह जानती थी कि एक मामूली सिर–दर्द के अच्छा करने मे प्राण तक को देना पड़ेगा। तब मै सीता और दमयन्ती की व्यथा को नही समझती थी, जगाई माधव की कथा पर विश्वास नही करती थी। अच्छा देवदास, इस संसार मे सभी कुछ सम्भव है?'

देवदास कुछ उत्तर नही सके; हत्बुद्धि की भांति कुछ क्षण देखकर कहा–'मै जाता हूं।'

'डर क्या है, जरा और बैठो। मै तुमको और भुलावे में नही रखना चाहती–मेरे वे दिन अब बीत गये। अब तुम मुझसे जितनी घृणा करते हो, मै भी अपने से उतनी ही घृणा करती हूं। लेकिन देवदास, तुम विवाह क्यो नहीं कर लेते?'

अब मानो देवदास मे नि:श्वास पड़ा। थोड़ा हंसकर कहा–'उचित है, पर इच्छा नही होती।'

'न होने पर भी करो। स्त्री का मुख देखकर बहुत कुछ शान्ति पाओगे। इसे छोड़ मेरे लिए भी एक राह खुल जायेगी–तुम्हारी गृहस्थी मे दासी की भांति रहकर स्वच्छन्द भाव से जीवन व्यतीत करूंगी।'

देवदास ने हंसकर कहा–'अच्छा, तब मैं तुम्हे बुला लूंगा।'

चन्द्रमुखी ने मानो उनकी हंसी न देखकर कहा–'देवदास, और एक बात पूछने की इच्छा होती है।'

'क्या?'

'तुमने इतनी देर तक मेरे साथ बातचीत क्यो की?'

'क्या कुछ अनुचित है?'

'यह नही जानती, लेकिन नयी बात है। शराब पीकर ज्ञान न रहने के पहले तुम कभी मुझसे बातचीत नही करते थे।'

देवदास ने उस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर, विषण्ण मुख से कहा–'आजकर शराब नही छूता, मेरे पिता की मृत्यु हो गयी है।'

चन्द्रमुखी बहुत देर तक उनके मुख की ओर करूणा–भरे नेत्रो से देखती रही, फिर कहा–'इसके बाद फिर पियोगे क्या?'

'कह नहीं सकता।'

चन्द्रमुखी ने उनके दोनो हाथो को कुछ खीचकर अश्रुपूर्ण और व्याकुल स्वर से कहा–'अगर हो सके तो छोड़ देना। ऐसा अमूल्य जीवन–रत्न को नष्ट मत करो!'

देवदास सहसा उठकर खड़े हो गये, कहा–'मैं चलता हूं। तुम जहां जाओ वहां से खबर देना, और अगर कुछ काम हो तो लिखना। मुझसे लज्जा मत करना।'

चन्द्रमुखी ने प्रणाम करके पद–धूलि लेकर कहा–'आशीर्वाद दो, जिससे मै सुखी होऊं और एक भीख मांगती हूं, ईश्वर न करे, किन्तु यदि कभी दासी की आवश्यकता हो, तो मुझे स्मरण करना।'

'अच्छा' कहकर देवदास चले गये। चन्द्रमुखी ने दोनो हाथो से मुख ढांपकर रोते–रोते कहा–
'भगवान! ऐसा करो जिसमे एक बार और दर्शन मिले।'

दो वर्ष हुए, पार्वती महेन्द्र का विवाह करके निश्चिन्त हुई है। जलदबाला बुद्धिमती और कार्य–पटु है। अब पार्वती के बदले गृहस्थी का बहुत–कुछ काम–काज वही करती है। पार्वती ने अब अपना मन दूसरी ओर लगाया है। आज पांच वर्ष हुए, उसका विवाह हुआ था; किन्तु अभी तक उसके कोई सन्तान नही हुई। अपने लड़की–लड़के के न रहने के कारण वह दूसरो के लड़की–लड़को को बहुत प्यार करती है। गरीब–गुरबे की बात को छोड़िये जिनके पास कुछ रुपये पैसे भी है, उनके पुत्र–पुत्रियो का भी अधिकांश भार वही वहन करती है। इसके अतिरिक्त ठाकुरबाड़ी के काम–काज, साधु–सन्यासियो की सेवा, लंगड़े–लूलो की शुश्रूषा मे अपना सारा दिन बिता देती थी। इसका व्यसन स्वामी को लगाकर पार्वती ने एक और अतिथिशाला भी निर्माण किया है। उससे निराश्रय और असहाय लोग अपनी इच्छा के अनुकूल रह सकते है। जमीदार के घर से उन लोगो को खाना–पीना मिलता है। और एक काम पार्वती बहुत छिपाकर करती है, स्वामी को भी नही जानने देती। वह ऊंचे घराने के दरिद्र लोगो को गुप्त रूप से रुपये–पैसे से सहायता देती है। यही उसका निजी खर्च है। स्वामी के पास से प्रति मास जो कुछ उसको मिलता है, सब इसी मे खर्च कर देती है। किन्तु चाहे जिस तरह से जो कुछ व्यय होता था, वह सदर कचहरी के नायब और गुमाश्ता से नहीं छिपा रहता था। वे लोग आपस मे इस विषय पर बक–बक, झक–झक किया करते थे। दासियां लुक–छिपकर सुन आती है कि गृहस्थी का व्यय आजकल पहले की अपेक्षा दूना हो गया है; तहवील खाली पड़ गई, कुछ भी बचने नहीं पाता। गृहस्थी के बेजा खर्च बढ़ने से दास–दासियो को मर्मन्तक पीड़ा होती है। वे लोग ये सब बाते जलदबाला को सुना आती है। एक दिन रात मे उसने स्वामी से कहा–'तुम क्या इस घर के कोई नही हो?'

महेन्द्र ने कहा–'क्यों, क्या बात है?'

स्त्री ने कहा–'दास–दासियां जानती है और तुम नही जानते? ससुर को तो नई मां प्राणो से बढ़कर

है, वे तो कुछ कहेगे ही नही, परन्तु तुम्हे तो कहना उचित है!'

महेन्द्र ने बात नहीं समझी, परन्तु उत्सुक हो पूछा–'किसकी बात कहती हो?'

जलदबाला गम्भीर भाव से स्वामी को मन्त्रणा देने लगी–'नयी मां के कोई लड़की-लड़का तो है ही नही, फिर उन्हे गृहस्थी से क्यो प्रेम होने लगा, देखते ही नही हो सब उड़ाये डालती है?'

जलदबाला ने भ्रू-कुंचित करके कहा–'क्यो कैसे?'

जलदबाला ने कहा–'तुम्हारे आंखे होती तो देखते! आजकल गृहस्थी का खर्च दूना हो गया, सदाव्रत, दान-खैरात, अतिथि-फकीर आदि के ऊपर अन्धाधुन्ध व्यय चढ़ रहा है। अच्छा, वे तो अपना परलोक सुधार रही है, किन्तु तुम्हारे लड़की-लड़के है? तब वे लोग क्या खायेगे? अपनी पूंजी बिकवाकर अन्त मे भीख मांगोगे क्या?'

महेन्द्र ने शैया पर बैठकर कहा–'तुम किसकी बात कहती हो, मां की?'

जलदबाला ने कहा–'मेरा भाग्य जल गया, जो ये सब बाते तुमसे मुझे कहनी पड़ती है।'

महेन्द्र ने कहा–'इसीलिए तुम मां के नाम नालिश करने आई हो?'

जलदबाला ने क्रोध से कहा–'मुझे नालिश-मुकदमे से काम नही, केवल भीतर की बाते जता दी, नही तो मुझी को दोष देते।'

महेन्द्र बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहे, फिर कहा–'तुम्हारे बाप के घर तो रोज हांडी भी नही चढ़ती, तुम जमीदार के घर के काम को क्या जानोगी?'

इस बार जलदबाला ने भी क्रोध करके कहा–'तुम्हारे मां-बाप के घर कितनी अतिथिशालाएं है, जरा मै सुनूं तो?'

महेन्द्र ने तर्क-वितर्क नही किया, चुपचाप सो गये। सुबह उठकर पार्वत के पास आकर कहा–'कैसा विवाह किया मां, इसको साथ लेकर गृहस्थी चलाना कठिन है। मै कलकत्ता जाऊंगा।'

पार्वती ने अवाक् होकर कहा–'क्यो?'

'तुम लोगो को कड़ी बाते कहती है, इसलिए मैने उसका त्याग किया।'

पार्वती कुछ दिन से बड़ी बहू के आचरण देखती आती है, किन्तु उसने उस बात को छिपा के हंसकर कहा–छिः! वह तो बहुत अच्छी लड़की है ऐसा न कहो!' इसके बाद जलदबाला ने एकान्त मे बुलाकर पूछा–'बहू! झगड़ा हुआ है क्या?'

सुबह से स्वामी के कलकत्ता जाने की तैयारी देख जलदबाला मन-ही-मन डरती थी, सास की बात सुनकर रोते-रोते कहा–'मेरा दोष नही है मां! किन्तु यही दासी सब खखरच-वरच की बाते करती है।'

पार्वती ने तब सभी बाते सुनी और आप ही लज्जित होकर बहू की आंखें पोछकर कहा–'बहू, तुम ठीक कहती हो। किन्तु मैं वैसी गृहस्थिन नही हूं, इसीलिए खर्च की ओर ध्यान नहीं रहा।'

फिर महेन्द्र को बुलाकर कहा–'महेन्द्र, बिना किसी अपराध के क्रोध नही करना चाहिए। तुम स्वामी हो, तुम्हारी मंगल-कामना के सामने स्त्री के लिए सब-कुछ तुच्छ है। बहू लक्ष्मी है।' किन्तु उसी दिन से पार्वती ने हाथ मोड़ लिया। अनाथ, अन्धे, फकीर आदि कितने ही लोग लौटने लगे। मालिक ने यह सुन पार्वती को बुलाकर कहा–'क्या लक्ष्मी का भंडार खाली हो गया?'

पार्वती ने साहस के साथ उत्तर दिया–'केवल देने से ही नही चलता कुछ दिन जमा भी करना चाहिए। देखते नही, खर्च कितना बढ़ गया है?'

'इससे क्या मतलब, मुझे कै दिन रहना है, पुण्य-कर्म करके परलोक तो बनाना ही चाहिए?'

पार्वती ने हंसकर कहा–'यह तो बिल्कुल स्वार्थ की बात है। अपना ही देखोगे और लड़की-लड़को को क्या बहा दोगे? कुछ दिन तक चुप रहो फिर सब उसी तरह चलेगा। मनुष्य के काम का कभी अन्त नही होता।'

अस्तु, चौधरी जी चुप हो रहे।

पार्वती को कोई काम नहीं रहा, इसी से चिन्ता कुछ बढ़ गयी। किन्तु सारी चिन्ता रहती है जिसकी आशा नही रहती, उसकी दूसरे प्रकार की चिन्ता रहती है। पूर्वोक्त चिन्ता मे सजीवता है, सुख है, तृप्ति है, दुख है और उत्कंठा है। इसी से मनुष्य श्रान्त हो जाते है–अधिक काल तक चिन्ता नही करते। किन्तु नैराश्य मे सुख नही है, दुख नही, उत्कंठा नही है केवल तृप्ति है। नेत्र से जल झरता है, गम्भीरता भी रहती है, किन्तु नित्य नवीन मर्मवेदना नही होती। हल्के बादल के समान इधर-उधर मंडराती है। जब तक हवा नही लगती, तब तक स्थिरता रहती है और ज्यों ही हवा लगती है गायब हो जाती है। तन्मय मन उद्वेगहीन चिन्ता मे एक सार्थक लाभ करता है। पार्वती की भी आजकल ठीक यही दशा है। पूजा-पाठ करने के समय अस्थिर, उद्देश्यहीन और हताश-सी रहती है; मन चटपट तालसोनापुर के बंसीवाड़ी, आम के बगीचे, पाठशाला, घर, बांध के तीर आदि स्थानो मे घूम आती है। इसके बाद वह किसी ऐसे स्थान मे जा छिपती है कि पार्वती स्वयं अपने आपको ढूंढकर बाहर नही निकाल सकती। पहले होठ पर कुछ हंसी की रेखा दिखाई पड़ती है, फिर तत्काल ही आंख से एक बूंद आंसू टपककर पंचपात्र के जल से मिल जाता है। तब भी दिन कटता ही है। काम-काज मे, मधुर-मधुर बातचीत मे, परोपकार और सेवा शुश्रुषा मे दिन कटता था और अब उसे छोड़ ध्यानमग्ना योगिनी की भांति भी कटता है। कोई लक्ष्मी-स्वरूपा अन्नपूर्णा कहता था और कोई अन्यमनस्का, उन्मादिनी कहता था। किन्तु कल सुबह से कुछ और ही परिवर्तन देखा जाता है। वह कुछ तीव्र और कठोर हो गयी है। ज्वार की गंगा मे हठात् भाटा का आरम्भ हुआ। घर मे कोई इसका कारण नही जानता, केवल हम लोग जानते है। मनोरमा ने गांव से एक चिट्ठी लिखी है। वह निम्न भांति है–

'पार्वती, बहुत दिन हुए, हम दोनो मे से किसी ने किसी को चिट्ठी नहीं लिखी; अतएव दोनो ही का दोष है। मेरी इच्छा है कि इसे मिटा दिया जाय। हम दोनो को दोष स्वीकार कर अभिमान कम करना चाहिए। किन्तु मै बड़ी हूं, इसीलिए मै ही मान की भिक्षा मांगती हूं। आशा है, शीघ्र उत्तर दोगी। आज प्राय: एक महीना हुआ, मै यहां आयी हूं। हम लोग गृहस्थ-घर की लड़कियां है, शारीरिक दुख-सुख पर उतना ध्यान नही देती। मरने पर कहती है गंगालाभ हुआ और जीते रहने पर कहती है कि अच्छी है। मै भी उसी प्रकार अच्छी हूं। किन्तु यह तो हुई अपनी बात; अब रही दूसरो की बात। यद्यपि कुछ ऐसे काम की बात नही है, फिर भी एक सम्वाद सुनाने की बड़ी इच्छा होती है। कल से ही सोच रही हूं कि तुम्हे सुनाऊं कि नही। सुनाने से तुम्हे क्लेश होगा और सुनाये बिना मैं रह नहीं सकती–ठीक मारीच की दशा हुई है। देवदास की दशा को सुनकर तुम्हे तो क्लेश ही होगा, पर मै भी तुम्हारी बातो को स्मरण कर पाने से नही बच सकती। भगवान ने बड़ी रक्षा की, नही तो तुम सरीखी अभिमानिनी उनके हाथ

मे पड़कर, इतने दिन के भीतर या तो गंगा मे डूब मरती या विष खा लेती! उनकी बात यदि आज सुनोगी तब भी सुनना है और चार दिन बाद भी सुनना है; उसे दबाने-छिपाने से लाभ ही क्या?

'आज प्राय: छ:-सात दिन हुए, वह यहां पर आये है। तुम तो जानती हो कि द्विज की मां काशीवास करती है और देवदास कलकत्ता मे रहते है, घर पर केवल भाई के साथ कलह करने और रुपया लेने आते है। सुनती हूं कि ऐसे ही वह बीच-बीच मे आया करते है। जितने दिन रुपया इकट्ठा नही होता उतने दिन रहते है, रुपया पाने पर चले जाते है।'

'उनके पिता को मरे आज ढाई बरस हुए। सुनकर आश्चर्य होता है कि इसी थोड़े समय मे ही अपनी आधी सम्पत्ति फूंक दी। द्विजदास अपने हिसाब-किताब से रहते है, इसी से किसी भांति अपने पिता की सम्पत्ति को अपने ही पास बचा के रखा, नही तो आज दूसरे लोग लूट खाते। शराब और वेश्या के पीछे सारा धन स्वाहा हो रहा है, कौन उसकी रक्षा कर सकता है? एक हम कर सकते है और उसमे भी देरी नही है। बड़ी रक्षा हुई जो तुम्हारा उनसे विवाह नही हुआ।'

'हाय-हाय! दुख भी होता है। वह सोने-जैसा वर्ण नही, वह रूप नही, वह श्री नही, मानो वह देवदास नहीं, कोई दूसरे ही है। रूखे सिर के बाल हवा मे उड़ा करते है। आंखे भीतर घुस गयी है और नाक खड़ग् की भांति बाहर निकली हुई है। कितना कुत्सित रूप हो गया है, यह तुमसे कहां तक कहूं? देखने से घृणा होती है, डर मालूम होता है। सारे दिन नदी के किनारे-किनारे और बांध के ऊपर हाथ मे बन्दूक लिये चिड़िया मारा करते है। धूप मे सिर चक्कर आने से वह बांध के ऊपर उसी बेर के पेड़ के साये में नीचा सिर किये बैठे रहते है। संध्या होने के बाद घर पर जाकर शराब पीते है, रात मे सोते है या घूमते है, यह भगवान जाने'

'उस दिन संध्या के समय मै नदी से जल लेने गयी थी। देखा, देवदास का मुंह सूखा हुआ है, बन्दूक हाथ मे लिये इधर-उधर घूम रहे है। मुझे पहचानकर, पास आकर खड़े हुए, मै डर से मर गयी। घाट पर कोई नही था, मैं उस दिन अपने आपे मे नही थी। ईश्वर ने रक्षा की कि उन्होने किसी किस्म की बुरी छेड़खानी नही की, केवल सज्जनोचित शान्त भाव से कहा-'मनो, अच्छी तरह तो हो?'

'मै और क्या करती, डरते-डरते सिर नीचा किये हुए कहा-'हां।'

तब उन्होने एक दीर्घ नि:श्वास फेककर कहा-'सुखी रहो बहिन, तुम्हे देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।' फिर धीरे-धीरे चले गये। मैं गिरते-पड़ते वहां से बड़े जोर से भागी। बाप रे! भाग्य से उन्होने हाथ आदि कुछ नहीं पकड़ा। रहने दो इन बातो को-इस सब दुर्वृत्ति की बातो के लिखने की जगह चिट्ठी में नही है।

'बड़ा कष्ट दिया, क्यों बहिन? आज भी यदि उन्हे नही भूली होगी तो अवश्य ही कष्ट होगा, किन्तु लाचारी है। और यदि असावधानतावश कोई अपराध हुआ हो, तो अपने सहज गुण से इस स्नेहाकांक्षिणी-मनो बहिन को क्षमा करना।'

कल चिट्ठी आयी है। आज उसने महेन्द्र को बुलाकर कहा-'दो पालकी और बत्तीस कहारो को बुला दो, मै अभी तालसोनापुर जाऊंगी।'

महेन्द्र ने आश्चर्य से पूछा-'पालकी और कहार तो मै बुलाये देता हूं; किन्तु दो क्यो मां?'

पार्वती ने कहा-'तुम साथ चलोगे। रास्ते मे अगर मर जाऊंगी, तो मुंह मे आग देने के लिए बड़े

लड़के की जरूरत पड़ेगी।'

महेन्द्र ने और कुछ नही कहा। पालकी आने पर दोनो आदमियो ने प्रस्थान किया।

चौधरी जी यह सुनकर व्यग्र हो उठे, दास-दासियो से पूछा, किन्तु कोई ठीक कारण नही बता सका। तब उन्होने अपनी बुद्धि से पांच दरबान, दास-दासियां भेज दी।

एक सिपाही ने पूछा-'रास्ते मे भेट होने पर पालकी लौटा लावे कि नही?'

उन्होने कुछ सोचकर कहा-'नही, लौटा लाने का कोई काम नही है। तुम लाग साथ जाना, जिससे कोई तकलीफ न हो।'

उसी दिन संध्या के बाद दोनो पालकियां तालसोनापुर पहुंची। किन्तु देवदास गांव मे नही थे, उसी दिन दोपहर मे कलकत्ता चले गये थे।

पार्वती ने सिर पीटकर कहा-'दुर्भाग्य!' और फिर मनोरमा के साथ भेट की।

मनोरमा ने पूछा-'क्या देवदास को देखने आयी थी?'

पार्वती ने कहा-'नही, साथ ले जाने के लिए आयी थी। उनका यहां पर अपना कोई नही है।'

मनोरमा अवाक् हो रही, कहा-'क्या कहती हो? जरा भी लज्जा नही करती?'

'लज्जा, और फिर किससे? अपनी चीज अपने साथ ले जाऊंगी! इसमे लज्जा क्या है?'

'छि:-छि:! क्या कहती हो? जिससे जरा भी सम्पर्क नही-ऐसी बात मुंह पर न लाओ।'

पार्वती ने मलिन हंसी हंसकर कहा-'मनो बहिन, ज्ञान होने के बाद से जो बात मेरे हृदय मे बस रही है, जब-तब वही मुख से बाहर निकल जाती है, तुम बहिन हो, इसी से इन बातो को सुन लेती हो।'

दूसरे दिन पार्वती माता-पिता के चरणो मे प्रणाम करके फिर पालकी पर सवार होकर चली गयी।

आज दो वर्ष हुए चन्द्रमुखी ने अपने रहने के लिए अशथझूरी गांव मे छोट नदी के तीर पर एक ऊंची जगह मे दो छोटे-छोटे मिट्टी के घर बनाये है। पास ही मे एक खलियान है, वहां पर उसकी एक हृष्ट-पुष्ट काली गाय बंधी रहती है। दो घरो मे, एक रसोईघर और भंडार है तथा दूसरे मे वह सोती है। सोकर उठने से पहले ही रामवाग्दी की स्त्री सब घर-द्वार झाड़-बुहारकर साफ कर देती है। मकान के चारो ओर सहन बना है, बीच मे एक बेर का पेड़ है और एक ओ एक तुलसी की चौतरिया है। सामने नदी की धार है, उसके आस-पास लोगो ने खजूर और केले आदि के वृक्ष लगा रखे है। चन्द्रमुखी को छोड़, इस घाट का उपयोग और कोई नही करता। वर्षा-काल मे नदी के फनफनाने पर चन्द्रमुखी के मकान के नीचे तक जल आ जाता है। उस समय लोग व्यग्र हो उठते है और कुदाली से मिट्टी खोदकर जगह को ऊंची बनाने के लिए दौड़ आते है। गांव मे ऊंची जाति के लोग नही रहते। किसान अहीर, कहार, कुर्मी, वाग्दी, दो घर कलवार और दो घर चमार रहते है। चन्द्रमुखी ने गांव मे आकर देवदास को सूचना दी; उत्तर मे उन्होने कुछ और रुपये भेज दिये। इन रुपयो मे से चन्द्रमुखी गांव के लोगो को उधार देती है। आपद-विपद मे सभी आकर उससे रुपया उधार ले जाते है। चन्द्रमुखी सूद नही लेती, उसके बदले कन्द-मूल, शाक-भाजी, जिसकी जो इच्छा होती है, दे जाता है। अमल के लिए भी किसी से जोर-जबरदस्ती नही करती। जो नही दे सकते, वे नही देते।

चन्द्रमुखी हंसकर कहती-'अब तुझे कभी न दूंगी।'

वह नम्र भाव से कहता-'मां, ऐसा आशीर्वाद दो कि इस बार अच्छी फसल हो।'

चन्द्रमुखी आशीर्वाद देती; किन्तु यदि फिर अच्छी फसल न होती तो वे फिर रोते हुए आकर हाथ पसारते और चन्द्रमुखी फिर देती। मन-ही-मन हंसकर वह कहती-वे अच्छी तरह से रहे, मुझे रुपये-पैसे की क्या कमी है।

किन्तु वे कहां है? प्राय: छ: महीने हुए, उसे कोई खबर नही मिली। चिट्ठी लिखी, किन्तु कोई जवाब नही मिला। रजिस्ट्री लगायी, वह लौट आयी। चन्द्रमुखी ने एक ग्वाले को अपने घर के पास बसा रखा था। उसके लड़के के विवाह मे साढ़े दस गंडे रुपये से सहायता दी थी; एक जोड़ा कड़ा भी खरीद दिया। उसका सारा परिवार चन्द्रमुखी का आश्रित और आज्ञाकारी था। एक दिन प्रात:काल चन्द्रमुखी ने भैरव ग्वाला को बुलाकर कहा-'भैरव, यहां से तालसोनापुर कितनी दूर है, जानते हो?'

भैरव ने सोचकर कहा-'यहां से कोई दो धाप पर कचहरी है।'

चन्द्रमुखी ने पूछा-'वहां पर जमीदार रहते है?'

भैरव ने कहा-'हां, वे भारी जमीदार है। यह गांव भी उन्ही का है। आज तीन वर्ष हुए, उनका स्वर्गवास हो गया। उनके श्राद्ध मे सारी प्रजा ने एक महीने तक पूरी तरकारी खायी थी। अब उनके दो लड़के है; वे लोग बहुत भारी आदमी है-राजा है।'

चन्द्रमुखी ने पूछा-'भैरव, तुम मुझे वहां तक पहुंचा सकते हो?'

भैरव ने कहा-'क्यो नही पहुंचा सकता; जिस दिन इच्छा हो, चलो।'

चन्द्रमुखी ने उत्सुक होकर कहा-'तब चलो न भैरव, मै आज ही चलूंगी।'

भैरव ने विस्मित होकर कहा-'आज ही?' फिर चन्द्रमुखी के मुख की ओर देखकर कहा-'तो तुम जल्दी से रसोई-पानी से निबट लो और मै भी तब तक थोड़ी फरूही बांधकर आता हूं।'

चन्द्रमुखी ने कहा-'आज मै रसोई करूंगी नही। भैरव तुम फरूही लेकर आओ।'

भैरव घर पर गया और कुछ फरूही चादर मे बांधकर, एक लाठी हाथ मे लेकर तुरन्त लौट आया, कहा-'तब चलो; पर क्या तुम क्या खाओगी नही?'

चन्द्रमुखी ने कहा-'नही भैरव, अभी मेरा पूजा-पाठ नही हुआ है, अगर समय पाऊंगी तो वही पर सब करूंगी।'

भैरव आगे-आगे रास्ता दिखलाता हुआ चला। पीछे-पीछे चन्द्रमुखी बड़े कष्ट के साथ पगडंडी के ऊपर चलने लगी। अभ्यास न रहने के कारण दोनो कोमल पांव क्षत-विक्षत हो गये। धूप के कारण सारा मुख लाल हो उठा। खाना-पीना कुछ न होने पर भी चन्द्रमुखी खेत-पर-खेत पार करती हुई चलने लगी। खेतिहर किसान लोग आश्चर्यित होकर उसके मुख की ओर देखते थे।

चन्द्रमुखी एक लाल पाढ़ की साड़ी पहने हुई थी, हाथ मे दो सोने के कड़े पड़े हुए थे, सिर पर ललाट तक घूंघट था और सारा शरीर एक मोटे बिछौने की चादर से ढंका हुआ था। सूर्यदेव के अस्त होने मे अब और अधिक विलम्ब नही है। उसी समय दोनो गांव मे आकर उपस्थित हुए। चन्द्रमुखी ने थोड़ा हंसकर कहा-'भैरव, तुम्हारा दो धाप इतनी जल्दी कैसे समाप्त हो गया?'

भैरव ने इस परिहास को न समझकर सरल भाव से कहा-'इस बार तो चली आयीं। पर क्या तुम्हारी सूखी देह आज ही फिर लौटकर चल सकेगी?'

चन्द्रमुखी ने मन-ही-मन कहा-आज क्या, जान पड़ता है कल भी ऐसे इतना रास्ता नही चल सकूंगी।

प्रकाश ने कहा–'भैरव, क्या यहां गाड़ी नही मिलेगी?'

भैरव ने कहा–'मिलेगी क्यो नही, बैलगाड़ी मिलेगी, कहो तो ठीक करके ले आवे?' गाड़ी ठीक करने का आदेश देकर चन्द्रमुखी ने जमीदार के घर मे प्रवेश किया।

भैरव गाड़ी का प्रबन्ध करने दूसरी ओर चला गया। भीतर ऊपरी खंड मे–दालान मे, बड़ी बहू बैठी थी। एक दासी चन्द्रमुखी को वही लेकर आयी। दोनो ने एक दूसरे को एक बार ध्यानपूर्वक देखा।

चन्द्रमुखी ने नमस्कार किया। बड़ी बहू शरीर पर अधिक अलंकार नही धारण करती, किन्तु आंखो के कोण पर अहंकार झलका करता है। दोनो होठ और दांत पान और मिस्सी से काले पड़ गये है। गाल कुछ ऊपर उठे हुए है और सारा चेहरा भरा–पूरा। केशो को इस प्रकार सजाकर बांधती है कि कपाल जगमगा उठता है। दोनो कानो मे मिलाकर कोई बीस–तीस छोटी–बड़ी बालियां पड़ी है। नाक के नीचे एक बुलाक लटकता है। नाक के एक ओर लौग पहने है। जान पड़ता है, यह सुराख नथ पहनने के लिए बना है।

चन्द्रमुखी ने देखा, बड़ी बहू बहुत मोटी–सोटी है, रंग विशेष श्याम है, आंखे बड़ी–बड़ी है, गोल गठन का मुख है, काले पाढ़ की साड़ी पहने है और एक नारंगी रंग की कुरती पहने है–यह सब देख चन्द्रमुखी के मन मे कुछ घृणा–सी उत्पन्न हुई। बड़ी बहू ने देखा कि चन्द्रमुखी के वयस्क होने पर भी उसका सौन्दर्य कम नही हुआ है। दोनो ही सम्भवत: समवयस्क है, किन्तु बड़ी बहू ने मन–ही–मन इसे स्वीकार नही किया। इस गांव मे पार्वती के अतिरिक्त इतना सौन्दर्य और किसी मे नही देखा। आश्चर्यित होकर पूछा–'तुम कौन हो?'

चन्द्रमुखी ने कहा–'मै आपकी ही एक प्रजा हूं, खजाने की मालगुजारी कुछ बाकी पड़ गयी थी, उसी को देने आयी हूं।'

बड़ी बहू ने मन–ही–मन प्रसन्न होकर कहा–'तो यहां क्यो आयी, कचहरी मे जाओ।'

चन्द्रमुखी ने मीठी हंसी हंसकर कहा–'मां, मै बड़ी दुखिया हूं, सब रूपया नही दे सकती। सुना है कि आप बड़ी दयावती है; इसी से आपके पास आयी हूं कि कुछ माफ कर दे।'

इस प्रकार की बात बड़ी बहू ने अपने जीवन मे पहली ही बार सुनी। उनमे दया है मालगुजारी माफ कर सकती हैं, आदि कहने के कारण चन्द्रमुखी तत्काल ही उनकी प्रिय–पात्री हो गयी। बड़ी बहू ने कहा–'दिन–भर मे कितने ही रुपये मुझे छोड़ने होते है, कितने ही लोग मुझे आकर पकड़ते है; मै नाही नही कर सकती, इसलिए सभी मेरे ऊपर क्रोध भी करते है। तो तुम्हारा कितना रुपया बाकी पड़ता है?'

'अधिक नही, कुल दो रुपये; पर मेरे लिए यही दो रुपये पहाड़ा हो रहे है; सारे दिन आज रास्ता चलकर यहां आयी हूं।'

बड़ी बहू ने कहा–'अहा! तुम दुखिया हो, तुम्हारे ऊपर मुझे दया करनी उचित है। ऐ बिन्दू! इनको बाहर लिये जाओ, दीवानजी से मेरा नाम लेकर कह देना कि दो रुपये माफ कर दे। अच्छा, तुम्हारा घर कहां है?'

चन्द्रमुखी ने कहा–'आपके ही राज्य मे–अशयझूरी गांव मे। अच्छा मां, क्या छोटे मालिक नही है?'

बड़ी बहू ने कहा–'अभागी! छोटा मालिक कौन है? दो दिन बाद सब मेरा ही तो होगा।'

चन्द्रमुखी ने उद्विग्न होकर पूछा–'क्यो? जान पड़ता है, छोटे बाबू पर खूब कर्ज है?'

बड़ी बहू ने थोड़ा हंसकर कहा–'मेरे यहां कई गांव बन्धक है। अब तक तो सब बिक गया होता। कलकत्ता मे शराब और वेश्या के पीछे सारा धन लुटाये डाल रहे है, उसका कोई हिसाब नही, कोई अन्त नही।'

चन्द्रमुखी का मुख सूख गया, थोड़ा ठहरकर उसने पूछा–'हां मां, तो छोटे बाबू इसी से घर भी नही आते?'

बड़ी बहू ने कहा–'आते क्यो नही है! जब रुपये की जरूरत पड़ती है तो आते है। उधार काढ़ते है, जमीन बन्धक रखते है, फिर चले जाते है। अभी दो महीने हुए आये थे, बाहर हजार रुपये ले गये। बचने की भी तो उम्मीद नही है, शरीर मे कई–एक बुरे रोग लग गये है! छि:! छि:!'

चन्द्रमुखी सिहर उठी, मलिन मुख से उसने पूछा–'वे कलकत्ता मे कहा रहते है?'

बड़ी बहू ने सिर ठोक कर, प्रसन्न मुख से कहा–'बड़ी बुरी दशा है! यह क्या कोई जानता है कि कहां, किस होटल मे रहते है, किस दोस्त के मकान मे पड़े रहते है–यह वही जाने या उनका दुर्भाग्य जाने।'

चन्द्रमुखी सहसा उठ खड़ी हुई, और बोली–'अब मै जाती हूं।'

बड़ी बहू ने थोड़ा आश्चर्यित होकर कहा–'जाओगी? अरी ओ बिन्दू...!'

चन्द्रमुखी ने बीच मे ही बाधा देकर कहा–'ठहरो मां, मै खुद ही कचहरी जाती हूं।' यह कहकर वह धीरे–धीरे चली गयी। घर के बाहर देखा, भैरव आसरा देख रहा है, और बैलगाड़ी एक किनारे खड़ी है। उसी रात को चन्द्रमुखी घर लौट आयी। प्रात:कार भैरव को फिर बुलाकर कहा–'भैरव, मै आज कलकत्ता जाऊंगी। तुम तो साथ जा नही सकोगे, इसलिए तुम्हारे लड़के को साथ ले जाऊंगी। बोलो, क्या कहते हो?'

भैरव–'जैसी तुम्हारी इच्छा हो। लेकिन कलकत्ता क्यो जाती हो मां, क्या कोई खास काम है?'

चन्द्रमुखी–'हां भैरव, खास काम है।'

'भैरव–'और जाओगी कब?'

चन्द्रमुखी–'यह नही कह सकती भैरव। अगर हो सका तो जल्दी ही आऊंगी और नही तो देर लगेगी। और अगर नही आ सकी तो घर–द्वार सब तुम्हारा ही होगा।'

पहले तो भैरव अवाक् हो गया, फिर उसकी दोनो आंखो मे जल भर आया, कहा–'यह कैसी बात कहती हो मां! तुम्हारे न आने से इस गांव के लोग कैसे रह सकेगे?'

चन्द्रमुखी के नेत्र भी सजल हो उठे, थोड़ी मीठी हंसी हंसकर कहा–'यह क्यो भैरव, मै तो कुल दो ही वर्ष से आयी हूं, इसके पहले तुम लोग कैसे रहते थे?'

इसका उत्तर मूर्ख भैरव नही दे सकता, किन्तु चन्द्रमुखी हृदय मे सब–कुछ समझती थी। भैरव का लड़का केवला उसके साथ जायेगा। गाड़ी पर आवश्यक चीज–वस्तु लादकर चलने के समय सभी स्त्री–पुरुष देखने आये, देखकर रोने लगे। चन्द्रमुखी भी अपनी आंखो के आंसू नही रोक सकी। नाश हो ऐसे कलकत्ता का, यदि देवदास न होते तो कलकत्ता मे रानी का पद मिलने पर भी चन्द्रमुखी ऐसे प्रेम तृणवत त्यागकर कभी न जा सकती।

दूसरे दिन वह क्षेत्रमणि के घर पर आ उपस्थित हुई। उसके पहले घर मे इस समय दूसरे लोग रहते थे। क्षेत्रमणि अवाक् हो गया, पूछा–'बहिन, इतने दिनो तक कहां थी?'

चन्द्रमुखी ने सत्य बात को छिपाकर कहा–'इलाहाबाद थी।'

क्षेत्रमणि ने एक बार अच्छी तरह से सारा शरीर देखकर कहा–'तुम्हारे सब गहने क्या हुए, बहिन?'

चन्द्रमुखी ने हंसकर संक्षेप मे उत्तर दिया–'सब है।'

उसी दिन मोदी से भेट करके कहा–'दयाल, मेरे कितने रुपये चाहिए?'

दयाल बड़ी विपद मे पड़ा, कहा–'यही कोई साठ-सत्तर रुपये चाहिए। आज नही, दो दिनो के बाद दूंगा।'

'तुम्हे कुछ न देना होगा, यदि मेरा एक काम कर दो।'

'कौन काम?'

'दो-तीन दिन के भीतर ही हम लोगो के मुहल्ले मे एक किराये का घर ठीक कर दो-समझे?'

दयाल ने हंसकर कहा–'समझा।'

'अच्छा घर हो, अच्छे-अच्छे बिछौने-चादर, चारपाई, लैम्प, दो कुरसियां, एक टेबिल हो-समझे?'

दयाल ने सिर नीचा कर लिया।

'साड़ी, कुरती, श्रृंगारदान, अच्छे गिलट के गहने आदि कहां मिल सकते है?'

दयाल मोदी ने ठिकाना बता दिया।

चन्द्रमुखी ने कहा–'तब वह सब भी एक सेट अच्छा-सा देखकर खरीदना होगा। मै साथ चलकर पसन्द कर लूंगी।' फिर हंसकर कहा–'मुझे जो-जो चाहिए सो तो जानते ही हो, एक दासी भी ठीक करनी होगी।'

दयाल ने कहा–'कब चाहिए?'

'जितना जल्द हो सके। दो-तीन दिन के भीतर ही ठीक होने से अच्छा होगा।' यह कहकर उसके हाथ मे सौ रुपये का नोट रखकर कहा–'अच्छी-अच्छी चीजे ले आना, सस्ती नही देखना।'

तीसरे दिन वह नये घर चली गयी। सारा दिन केवलराम को साथ लेकर अपनी इच्छानुसार घर को सजाया एवं सन्ध्या के पहले अपने को सजाने बैठी। साबुन से मुंह धोया, इसके बाद पाउडर लगाया, लाल रंग से पांवो को रंगा और पान खाकर होठ रंगे। फिर सारे अंगो मे आभूषण धारण किये, कुरती और साड़ी पहनी। बहुत दिन बाद आज केश संवारकर सिर मे टीका लगाया। आईने मे मुंह देखकर मन-ही-मन कहा-अब और न जाने और क्या-क्या भाग्य मे बदा है।

देहाती बालक केवलराम ने यह साज-बाज और पोशाक देखकर भीत भाव से पूछा–'यह क्या, बहिन?'

चन्द्रमुखी ने हंसकर कहा–'केवल, आज मेरे पति आवेगे।'

केवलराम विस्मय नेत्रो से देखता रहा।

सन्ध्या के बाद क्षेत्रमणि आया, पूछा–'बहिन, अब यह सब क्या?'

चन्द्रमुखी ने मुख नीचा कर, हंसकर कहा–'क्यो, यह सब अब नही चाहिए?'

क्षेत्रमणि कुछ देर चुपचाप देखता रहा, फिर कहा–'जितनी उम्र बढ़ती जाती है, उतना ही सौन्दर्य भी

बढ़ता जाता है।'

वह चला गया। चन्द्रमुखी आज बहुत दिनो बाद फिर खिड़की पर आकर बैठी। एकटक रास्ते की ओर देखती रही। यही उसका काम है, यही करने वह आयी है। जितने दिन वह यहां रहेगी उतने दिन यही करेगी। कोई-कोई नये आदमी आना चाहते थे, द्वार ठेलते थे, किन्तु उसी समय केवलराम कहता था-'यहां नही आना।'

पुराने परिचित लोगो मे से यदि कोई आता तो चन्द्रमुखी बैठकर, हंस-हंसकर बाते करती। बात-ही-बात मे देवदास की बात पूछता। जब वे न बता सकते, तो उदास मन से विदा कर देती। रात अधिक बीतने पर स्वयं बाहर निकल जाती थी। मुहल्ले-मुहल्ले, द्वार-द्वार घूमती-फिरती छिपकर लोगो की बाते कान देकर सुनती, कुछ लोग अनेको प्रकार की बाते करते थे, किन्तु वह जो सुनना चाहती थी, वह कही नही सुन जाती थी। आते-जाते हुए लोगो मे से वह बहुतो को देवदास समझकर पास जाती थी, किन्तु जब किसी दूसरे को देखती थी तो धीरे से लौट आती थी। दोपहर के समय वह अपनी पुरानी साथिनो के घर जाती। बात-ही-बात मे पूछती-'क्यो, देवदास के विषय मे भी कुछ जानती हो?'

वह पूछती-'कौन देवदास?'

चन्द्रमुखी उत्सुक भाव से परिचय देने लगती-'गोरा रंग है, सिर पर घुंघराले बाल है, ललाट के एक ओर चोट का दाग है, धनी आदमी है, बहुत रुपया खर्च करते है, क्या तुम पहचानती हो?'

कोई पता नही बता सकता था। हताश होकर उदास मन से चन्द्रमुखी घर लौट आती थी। बड़ी रात तक रास्ते की ओर देखती रहती थी। नीद आने पर विरक्त भाव से मन-ही-मन कहती-यह क्या तुम्हारे सोने का समय है?

इस तरह एक महीना बीत गया। केवलराम भी ऊब उठा। चन्द्रमुखी को स्वयं पर सन्देह होने लगा कि वे यहां पर नही है। फिर भी आशा-भरोसा मे दिन पर दिन बीतने लगे।

कलकत्ता आये हुए डेढ़ महीना हो गया। आज उसके ब्रह्म प्रसन्न हुए। रात के ग्यारह बज गये थे, हताश मन से वह घर लौट रही थी। इतने मे ही देखा, रास्ते के एक ओर दरवाजे के सामने एक आदमी आप-ही-आप कुछ बड़बड़ा रहा है। इस कंठ-स्वर से वह भली-भांति परिचित थी। करोड़ो लोगो के बीच मे भी वह उस स्वर को पहचान सकती थी। उस स्थान पर कुछ अन्धकार था, वही पर कोई मनुष्य नशे मे चूर पड़ा हुआ था। चन्द्रमुखी ने पास जाकर शरीर पर हाथ रखकर पूछा-'तुम कौन हो, जो यहां पर इस तरह पड़े हो?'

उस मनुष्य ने जोर से कहा-'सुनो तो सही मेरे मन की बाते, यदि पाऊं मै अपने स्वामी को।'

चन्द्रमुखी को अब और कुछ सन्देह नही रहा, उसने पुकारा-'देवदास!'

देवदास ने उसी भांति कहा-'हूं?'

'यहां क्यो पड़े हो, घर चलोगे?'

'नही, अच्छी तरह हूं।'

'थोड़ी शराब पियोगे?'

'हां पिऊंगा'-कहकर एकाएक चन्द्रमुखी का गला जकड़ लिया, कहा-'ऐसी भलाई करने वाले तुम कौन हो भाई?'

चन्द्रमुखी की आंखो से आंसू गिरने लगे। बड़े परिश्रम के साथ गिरते-पड़ते चन्द्रमुखी के कन्धे का सहारा लेकर उठे। कुछ देर मुख की ओर देखने के बाद कहा-'भाई यह बड़ी अच्छी चीज है।'

चन्द्रमुखी ने आह भरी हंसी हंसकर कहा-'हां, बड़ी अच्छी चीज है। जरा मेरे कन्धे का सहारा लेकर कुछ आगे चलो, एक गाड़ी ठीक करनी होगी।'

'गाड़ी क्या होगी?'-रास्ते मे आते-आते देवदास ने बैठे हुए गले से कहा-'सुन्दरी, तुम मुझे पहचानती हो?'

चन्द्रमुखी ने कहा-'पहचानती हूं।'

देवदास ने हकलाते हुए कहा-'और लोगो ने तो मुझे भुला दिया है, भाग्य है जो तुम पहचानती हो।' फिर गाड़ी पर सवार होकर, चन्द्रमुखी के शरीर पर बोझ दिये ही घर पर आये। दरवाजे के पास खड़े होकर जेब मे हाथ डालकर कहा-'सुन्दरी; गाड़ी तो ले आयी, किन्तु जेब मे कुछ नही है।'

चन्द्रमुखी ने कोई उत्तर नही दिया। चुपचाप हाथ पकड़े हुए ऊपर लाकर लिटाकर कहा-'सो जाओ।'

देवदास ने उसी भांति बैठे हुए गले से कहा-'क्या कुछ चाहिए नही?

मैने जो कहा कि जेब खाली, कुछ मिलने की आशा नही है। समझी सुन्दरी?'

सुन्दरी उसे समझ गयी, कहा-'कल देना।'

देवदास ने कहा-'इतना विश्वास तो ठीक नही। क्या चाहिए, खुलकर कहो?'

चन्द्रमुखी ने कहा-'कल सुनना।'-यह कहकर वह बगले के दूसरे कमरे मे चली गयी।

देवदास की जब नीद टूटी तो दिन चढ़ गया था। घर मे कोई नही था। चन्द्रमुखी स्नान करके भोजन पकाने की तैयारी मे थी। देवदास ने चारो ओर आश्चर्य से देखा कि इस स्थान मे वे कभी नही आये थे, एक चीज भी नही पहचान सके। पिछली रात की एक बात भी याद नही आती थी; केवल किसी की आन्तरिक सेवा का कुछ-कुछ स्मरण आता था। किसी ने मानो बड़े स्नेह के साथ लाकर सुला दिया। इसी समय चन्द्रमुखी ने घर मे प्रवेश किया। रात की सज-धज मे इस समय बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। शरीर पर गहने तो अब भी वे ही थे। किन्तु रंगीन साड़ी, माथे का टीका, मुख मे पान का दाग आदि कुछ भी नही थे। केवल एक धोई हुई श्वेत साड़ी पहने हुए वह घर मे आयी। देवदास चन्द्रमुखी को देखकर खिल उठे, बोले-'कहां से कल मुझे यहां बुला ले आयी?'

चन्द्रमुखी ने कहा-'बुला नही लायी, रास्ते मे तुम्हे पड़ा हुआ देखकर उठा ले आयी।'

देवदास ने कुछ गम्भीर होकर कहा-'अच्छा, यह तो हुआ सो हुआ, पर तुम्हे यहां कैसे पाता हूं? तुम कब आयी? तुम तो गहना नही पहनती थी, फिर कैसे पहनने लगी?'

चन्द्रमुखी ने देवदास के मुख पर एक तीव्र दृष्टि डालकर कहा-'फिर से...!'

देवदास ने हंसकर कहा-'नही-नही, यह हो नही सकता; ऐसी हंसी करने मे भी दोष है। आयी कब?'

चन्द्रमुखी ने कहा-'डेढ़ महीना हुआ।'

देवदास ने मन-ही-मन कुछ हिसाब लगाया, फिर कहा-'मेरे मकान से लौटने के बाद ही यहां पर आयी?'

चन्द्रमुखी ने विस्मित होकर कहा-'तुम्हारे घर पर मेरे जाने की खबर तुम्हे कैसे मिली?'

देवदास ने कहा–'तुम्हारे लौटने के बाद ही मै मकान पर गया था। एक दासी से, जो तुम्हे बड़ी बहू के पास ले गयी थी, सुनने मे आया कि कल अशथझूरी गांव से एक बड़ी सुन्दर स्त्री आयी थी। फिर समझना कितना कठिन था? किन्तु इतना गहना कहां से गढ़ाया?'

चन्द्रमुखी ने कहा–'गढ़ाया नही; ये सब गिलट के गहने है, इन्हे कलकत्ता मे आकर खरीदा है। तुम्हे देखने के लिए मैने कितना फिजूल खर्च किया है, और कल तो तुम मुझे पहचान भी नही सके।'

देवदास ने हंसकर कहा–'एकबारगी नही पहचान सका, कोशिश करने पर पहचाना था। कई बार मन मे आया कि चन्द्रमुखी को छोड़कर मेरी ऐसी सेवा कौन करेगा?'

मारे हर्ष के चन्द्रमुखी को रोने की इच्छा हुई। कुछ देर तक चुप हो रहने के बाद कहा–'देवदास, मुझसे अब वैसी घृणा करते हो या नही?'

देवदास ने जवाब दिया–'नही, वरन् प्रेम करता हूं।'

दोपहर मे स्नान करने के समय चन्द्रमुखी ने देखा कि देवदास की छाती मे एक फलालेन का टुकड़ा बंधा है। भयभीत होकर पूछा–'यह क्या फलालेन क्यो बांधा है?'

देवदास ने कहा–'छाती मे एक प्रकार की पीड़ा होती है, तुम तो सुख से हो?'

चन्द्रमुखी ने सिर धुनकर कहा–'सर्वनाश करना चाहते हो क्या? फेफड़े मे पीड़ा है?'

देवदास ने हंसकर कहा–चन्द्रमुखी ऐसा ही कुछ है। उसी दिन डॉक्टर ने आकर बहुत देर तक परीक्षा करने के बाद यही आशंका स्थिर की। औषध लिख दी तथा बताया कि यदि विशेष सावधानीपूर्वक न रहा जायेगा तो भारी अनिष्ट होने की सम्भावना है। दोनो ही ने इसका तात्पर्य समझा। पत्र द्वारा घर से धर्मदास को बुलाया गया और चिकित्सा के लिए बैक से रुपया आया। दो दिन इसी भांति बीत गये, किन्तु तीसरे दिन ज्वर का आविर्भाव हुआ।'

देवदास ने चन्द्रमुखी को बुलाकर कहा–'बड़े अच्छे समय से आयी, नही तो मुझे यहां कौन देखता?' आंसू पोछकर चन्द्रमुखी प्राणपण से सेवा करने बैठी। दोनो हाथ जोड़कर प्रार्थना की–'भगवान्, ऐसे असमय मे इतना काम आ पड़ेगा, यह स्वप्न मे भी आशा नही थी। किन्तु देवदास को शीघ्र अच्छा कर दो!'

प्राय: एक मास से ऊपर अधिक देवदास चारपाई पर पड़े रहे, फिर धीरे–धीरे आरोग्य होने लगे। रोग अधिक बढ़ने नही पाया।

इसी समय एक दिन देवदास ने कहा–'चन्द्रमुखी, तुम्हारा नाम बहुत बड़ा है। पुकारने मे कुछ असुविधा–सी होती है, इसे थोड़ा छोटा कर देना चाहता हूं।'

चन्द्रमुखी ने कहा–'अच्छी बात है।'

देवदास ने कहा–'आज से तुम्हे 'बहू' कह के पुकारूंगा।'

चन्द्रमुखी हंस पड़ी, कहा–'इसे पुकारने का कोई मतलब भी होना चाहिए।'

'क्या सभी बातो का मतलब हुआ करता है? मेरी इच्छा।'

'यदि इच्छा ही है तो कहो। किन्तु यह इच्छा कैसी, यह तो कहो!'

'नही, कारण मत पूछो।'

चन्द्रमुखी ने सिर नीचा करके कहा–'अच्छी बात है, यही सही।'

देवदास ने बहुत देर तक चुप रहने के बाद हठात् गम्भीर भाव से पूछा–'अच्छा बहू, तुम मेरी कौन हो, जो इतने प्राणपण से मेरी सेवा करती हो?'

चन्द्रमुखी न तो लज्जाशील वधू ही है और न बातचीत मे अनभ्यस्त बालिका; देवदास के मुख की ओर स्थिर–शान्त दृष्टि रखकर स्नेह–जड़ित कंठ से कहा–'तुम मेरे सर्वस्व हो, क्या यह अब भी नही समझ सके?'

देवदास दीवाल की ओर देख रहे थे। उसी ओर देखते हुए धीरे–धीरे कहा–'यह सब समझता हूं, किन्तु इससे आनन्द नही मिलता। पार्वती को मै कितना प्यार करता था और वह भी मुझे कितना प्यार करती थी, पर इससे अन्त मे मिला कष्ट ही। बहुत दुख पाने पर सोचा था कि अब कभी प्रेम के फंदे मे पांव नही दूंगा। जानते हुए दिया भी नही। परन्तु तुमने यह क्या किया? जोर देकर फिर उसमे मुझे क्यो फंसाया?–यह कहकर कुछ क्षण चुप रहने के बाद फिर कहा–'बहू, जान पड़ता है, तुम भी पार्वती की भांति दुख उठाओगी।'

चन्द्रमुखी मुख पर आंचल देकर चारपाई के एक ओर चुपचाप बैठी रही।

देवदास ने फिर मृदु–कंठ से कहना आरम्भ किया–'तुम दोनो मे कितनी विषमता है। एक कितनी अभिमानिनी और उद्धत है और दूसरी कितनी शांत और कितनी संयम है। वह कुछ भी नही सह सकती और तुम कितना सहती हो! उसका कितना यश और कितना नाम है और तुम कितनी कलंकिता हो! सभी उसे प्यार करते है, पर तुम्हे कोई प्यार नही करता! फिर मै प्यार करता हूं–'कैसे करता हूं!'–कहकर एक दीर्घ नि:श्वास फेककर फिर कहा–'पाप–पुण्य के विचारकर्ता तुम्हारा कैसा विचार करेगे, यह नही कह सकता, पर मृत्यु के बाद यदि मिलन होगा तो मै तुमसे कभी दूर नही रहूंगा।'

चन्द्रमुखी भीतर–ही–भीतर रो पड़ी, दिल बड़ा छोटा हो गया, मन–ही–मन प्रार्थना करने लगी–'भगवान! किसी काल या किसी जन्म मे अगर इस पापिष्ठा का प्रायश्चित हो जाय तो मुझे इन्हे ही पुरस्कार मे देना!

दो महीने बीत गये। देवदास आरोग्य हो गये, पर अभी शरीर नही भरा। वायु–परिवर्तन आवश्यक था। कल पश्चिम की ओर जायेगे, साथ मे केवल धर्मदास रहेगा।

चन्द्रमुखी ने देवदास का हाथ पकड़कर कहा–'तुम्हे एक दासी भी तो चाहिए–मुझे साथ लेते चलो।'

देवदास ने कहा–छि:! यह क्या हो सकता है? और जो चाहे सो करूं, परन्तु इतनी बड़ी निर्लज्जता नही कर सकता।''

चन्द्रमुखी चुप हो रही। वह अबूझ नही है, सब बाते सहज ही समझ गयी, और जो हो, पर इस संसार मे उसका सम्मान नही है, उसके रहने से देवदास की अच्छी सेवा होगी, सुख मिलेगा, किन्तु कही भी सम्मान नही मिलेगा। आंख पोछकर कहा–'अब फिर कब देख सकूंगी?'

देवदास ने कहा–'यह नही कह सकता। चाहे कही भी होऊं, परन्तु तुम्हे भूलूंगा नही, तुम्हे देखने की तृष्णा कभी मिटेगी नही।'

प्रणाम करके चन्द्रमुखी अलग खड़ी हो गयी। मन–ही–मन कहा–यही मेरे लिए यथेष्ट है, इससे अधिक आशा करना व्यर्थ है।'

जाने के समय देवदास ने चन्द्रमुखी के हाथ मे और दो हजार रुपये रखकर कहा–'इन्हे रखो। मनुष्य

के शरीर का कोई विश्वास नही है, पीछे तुम दुख-सुख मे किसके आगे हाथ पसारोगी?'

चन्द्रमुखी ने इसे भी समझा, इसी से रुपया ग्रहण कर लिया। आंसू पोछकर पूछा-'तुम एक बात मुझे बताते जाओ।'

देवदास ने मुख की ओर देखकर कहा-'क्या?'

चन्द्रमुखी ने कहा-'बड़ी बहू-तुम्हारी भाभी-ने कहा था कि तुम्हारे शरीर मे बुरा रोग उत्पन्न हो गया है, यह क्या सच है?'

प्रश्न सुनकर देवदास को दुख हुआ, कहा-'बड़ी बहू सब कह सकती है, किन्तु क्या तुम नही जानती? मेरा कौन-सा भेद तुम नही जानती? एक विषय मे तो पार्वती से भी बढ़ी हुई हो।'

चन्द्रमुखी ने एक बार आंख पोछकर कहा-'सब समझ गयी। परन्तु फिर भी खूब सावधानी से रहना। तुम्हारा शरीर निर्बल है, देखो किसी प्रकार की त्रुटि न होने पावे।' प्रत्युत्तर मे देवदास ने केवल हंस दिया।

चन्द्रमुखी ने कहा-'और एक भिक्षा है, तनिक भी तबीयत खराब होने पर मुझे खबर अवश्य देना।

देवदास ने उसके मुख की ओर देखकर सिर नीचा करके कहा-'दूंगा-अवश्य दूंगा बहू।' फिर एक बार प्रणाम करके चन्द्रमुखी रोती हुई दूसरे कमरे मे चली गयी।

कलकत्ता से आकर देवदास कुछ दिन इलाहाबाद रहे। उसी बीच उन्होने चन्द्रमुखी को एक चिट्ठी लिखी-'बहू, मैने विचार किया है कि अब किसी से प्रेम न करूंगा। एक तो प्रेम करके खाली हाथ लौटने से बड़ी यातना मिलती है, दूसरे इस संसार मे प्रेम का पथ ही दुख और दैन्य से पूर्ण है।' इसके उत्तर मे चन्द्रमुखी ने क्या लिखा, इसके लिखने की यहां आवश्यकता नही है, पर इस समय देवदास मन-ही-मन केवल यही सोचते रहते थे कि एक बार उसका यहां आना ठीक होगा या नही?

दूसरे ही क्षण सोचते-'नही-नही, कोई काम नही है। यदि किसी दिन पार्वती सुन लेगी, तो क्या कहेगी? इस भांति कभी पार्वती और कभी चन्द्रमुखी उनके हृदय-आवास मे वास करती थी। और कभी दोनो के ही सुख एक साथ उनके हृदय-पट पर अंकित होते थे...

हृदय ऐसा शून्य हो जाता था कि केवल एक निजीव अतृप्ति उनके हृदय मे मिथ्या प्रतिध्वनि की भांति गूंज उठती थी। इसके बाद देवदास लाहौर चले गये। वहां चुन्नीलाल नौकरी करते थे, खबर पाकर भेट करने के लिए आये। बहुत दिनो के बाद आज दोनो मित्र एक-दूसरे को देखकर लज्जित और साथ ही सुखी हुए। फिर देवदास ने शराब पीना शुरू किया। चन्द्रमुखी की छाया उनके मन मे बनी हुई थी, उसने शराब का निषेध किया था। सोचते, वह कितनी बड़ी बुद्धिमती है! कैसी धीरा और शान्त है, कितना उसका स्नेह है! पार्वती इस समय स्वप्नवत् विस्मृत हो रही थी-केवल बुझते हुए दीप के समान जब-तब उसकी स्मृति भभक उठती थी। परन्तु यहां की जलवायु उनके अनुकूल नही पड़ी। बीच-बीच मे बीमार पड़ने लगे, छाती मे फिर कड़क जान पड़ती थी। धर्मदास ने एक दिन रोते-रोते कहा-'देवता, तुम्हारा शरीर फिर गिर चला, इसलिए और कही चलो!'

देवदास ने अनमने भाव से जवाब दिया-'अच्छा, चला जायेगा।'

देवदास प्राय: घर पर शराब नही पीते। किसी दिन चुन्नीलाल के आने पर पीते है और किसी दिन बाहर चले जाते है। रात के तीसरे-चौथे पहर घर लौटते थे और किसी-किसी दिन नही भी आते थे।

आज दो दिन से उनका पता नही है। मारे शोक के धर्मदास ने अब तक अन्न-जल भी नही ग्रहण किया। तीसरे दिन वे ज्वर लेकर घर लौटे। चारपाई पकड़ ली। तीन डॉक्टरो ने आकर चिकित्सा आरम्भ की।

धर्मदास ने पूछा-'देवता काशी मे मां को यह खबर भेज दूं?'

देवदास ने तत्काल बाधा देकर कहा-'छिः-छिः! मां को क्या यह मुंह दिखाने लायक है?'

धर्मदास ने इसके प्रतिवाद मे कहा-'रोग-शोक तो सभी को होते है, पर क्या इसी से इतने बड़े दुख को मां से छिपाया जा सकता है? तुम्हे कोई लज्जा नही है देवता, काशी चलो।'

देवदास ने मुंह फिराकर कहा-'नही धर्मदास, इस समय उनके पास नही जा सकूंगा। अच्छा होने के बाद देखा जायेगा।'

धर्मदास ने मन मे सोचा कि चन्द्रमुखी की चर्चा करे, किन्तु वह स्वयं ही उससे इतना घृणा करता था कि यह विचार उठने पर भी वह चुप ही रहा।

देवदास की चन्द्रमुखी को बुलाने की स्वयं भी इच्छा होती थी, पर कह कुछ नहीं सकते थे। अस्तु, कोई आया नही। कुछ दिन के बाद धीरे-धीरे आरोग्य होने लगे। एक दिन उन्होने धर्मदास से कहा-'अगर तुम्हारी इच्छा हो तो चलो इस बार और कही चला जाये'

इस समय और कही चलने की जरूरत नही है, अगर हो सके तो घर चलो, नही तो मां के पास चलो।'

माल-असबाब बांधकर, चुन्नीलाल से विदा लेकर, देवदास फिर इलाहाबाद चले आये। शरीर इस समय भली-भांति अच्छा हो गया था। कुछ दिन रहने के बाद उन्होने एक दिन धर्मदास से कहा-'धर्म, किसी नयी जगह नही चलोगे? अभी तक बम्बई नही देखी, वहां चलोगे?'

उनका अतिशय आग्रह देखकर इच्छा न रहते हुए भी धर्मदास बम्बई चलने को तैयार है....

यहां आकर देवदास को बहुत कुछ आराम मिला।

एक दिन धर्मदास ने कहा-'यहां रहते बहुत दिन हो गये, अब घर चलना अच्छा होगा।'

देवदास ने कहा-'नही, यहां अच्छी तरह हूं। अभी कुछ दिन यहां और रहूंगा।'

एक वर्ष बीत गया। भादो का महीना था। एक दिन प्रातःकाल देवदास धर्मदास के कन्धे के सहारे से बम्बई-अस्पताल से बाहर आकर गाड़ी मे बैठे। धर्मदास ने कहा-'देवता, मेरी सलाह से इस समय मां के पास चलना अच्छा होगा।'

देवदास की दोनो आंखे डबडबा आयी। आज कई दिन से वे भी मां को स्मरण कर रहे थे। अस्पताल मे पड़े-पड़े वे जब-तब यही सोचते थे कि इस संसार मे उनके सभी है और कोई भी नही है। उनके मां है, बड़ा भाई है, बहिन से बढ़कर पार्वती है, चन्द्रमुखी भी है। उनके सभी है, पर वे किसी के नही है। धर्मदास रोने लगा, कहा-'भाई, इससे अच्छा है कि मां के पास चलो।'

देवदास ने मुंह फेरकर आंसू पोछकर कहा-'नही धर्मदास, मां को मुंह दिखाने लायक नही हूं। जान पड़ता है, अभी मेरा समय नही आया।'

वृद्ध धर्मदास फूट-फूट कर रोने लगा, कहा-'भैया, अभी तो मां जीती ही है।'

इस बात मे कितना भाव भरा हुआ था-इसका उन्ही दोनो की अन्तरात्मा अनुभव कर सकी। देवदास की अवस्था इस समय बड़ी शोचनीय थी। सारे पेट की प्लीहा और फेफड़े ने छेक लिया था, उस पर

ज्वर और खांसी का प्रबल प्रकोप था। शरीर का रंग एकदम काला पड़ गया था, केवल ठठरी मात्र बच रही थी। आंखे भीतर की ओर घुस गयी थी, उनमे एक प्रकार की अस्वाभाविक उज्ज्वलता चमका करती थी। सिर के बाल बड़े रूखे-रूखे हो रहे थे, सम्भवत: चेष्टा करने से गिने भी जा सकते थे। हाथ की उंगलियो को देखने से घृणा उत्पन्न होती थी-एक तो वे नितान्त दुबली-पतली, दूसरे कुत्सित रोगो के दाग से खराब हो गयी थी। स्टेशन पर आकर धर्मदास ने पूछा-'कहां का टिकट कटाया जायेगा देवता?'

देवदास ने कुछ सोचकर कहा-'चलो पहले घर चले, फिर देखा जायेगा।'

गाड़ी प्लेटफार्म पर आयी। वे लोग हुगली का टिकट खरीदकर बढ़ गये। धर्मदास देवदास के पास हो रहा। संध्या के कुछ पहले ही देवदास की आंखो से चिनगारियां निकलने लगी। धीरे-धीरे धुआंधार बुखार चढ़ आया। उन्होने धर्मदास को बुलाकर कहा-'धर्मदास आज ऐसा मालूम पड़ता है कि घर भी पहुंचना कठिन होगा।'

धर्मदास ने डरकर कहा-'क्यो भैया?'

देवदास ने हंसने की चेष्टा करके कहा-'फिर बुखार चढ़ आया धर्मदास!'

काशी को गाड़ी पार कर गयी तब तक देवदास अचेत थे। पटना के पास आकर जब उन्हे होश हुआ, तो कहा-'तब तो धर्मदास, मां के पास सचमुच नही जा सके।'

धर्मदास ने कहा-चलो, भैया, पटना मे उतरकर हम डॉक्टर को दिखा ले।'

उत्तर मे देवदास ने कहा-'रहने दो, अब हम लोग घर पर ही चलकर उतरेगे।'

गाड़ी जब पंडुआ स्टेशन पर आकर खड़ी हुई, तब पौ फट चुकी थी। रात-भर खूब वर्षा हुई थी, अभी थोड़ी देर से थमी हुई है। देवदास उठ खड़े हुए। नीचे धर्मदास सोया हुआ था। धीरे से उसके सिर पर हाथ रखा, किन्तु लज्जावश जगा नही सके। फिर द्वार खोलकर धीरे से नीचे प्लेटफार्म पर उतर गये। गाड़ी सोये हुए धर्मदास का लेकर चली गयी। कांपते-कांपते देवदास स्टेशन के बाहर आये। एक गाड़ीवान को बुलाकर पूछा-'क्या हाथीपोता चल सकता है?'

उसने एक बार मुंह की ओर, फिर एक बार इधर-उधर देखकर कहा-'नही बाबू, रास्ता अच्छा नही है। घोड़े की गाड़ी ऐसे कीचड़ पानी मे उधर नही जा सकेगी।'

देवदास ने उद्विग्न होकर पूछा-'क्या पालकी मिल सकती है?'

गाड़ीवान ने कहा-'नही।'

देवदास इसी आशंका मे धप् से बैठ गये कि क्या तब जाना नही होगा? उनके मुख से उनकी अन्तिम अवस्था के चिन्ह सुस्पष्ट प्रकट हो रहे थे। एक अन्धा भी उसे भलीभांति देख सकता था।

गाड़ीवान ने दयार्द्र होकर पूछा-'बाबूजी, एक बैलगाड़ी ठीक कर दे?'

देवदास ने पूछा-'कब पहुंचूंगा?'

गाड़ीवान ने कहा-'रास्ता अच्छा नही है, इससे शायद दो दिन लग जायेगे।'

देवदास ने मन-ही-मन हिसाब लगाने लगे कि दो दिन जीते रहेगे या नही। पर पार्वती के पास जाना जरूरी है। इस समय उनके मन मे पिछले दिनो के बहुत-से झूठे आचार-व्यवहार और बहुत-सी झूठी बाते एक-एक करके स्मरण आने लगी। किन्तु अन्तिम दिन की इस प्रतिज्ञा को सच करना ही होगा। चाहे जिस तरह से हो, एक बार उसे दर्शन देना ही होगा। पर अब इस जीवन की अधिक मियाद बाकी

नही है, इसी की विशेष चिन्ता है।

देवदास जब बैलगाड़ी मे बैठ गये, तो उन्हे माता का ध्यान आया। वे व्याकुल होकर रो पड़े। जीवन के इस अन्तिम समय मे एक और स्नेहमयी पवित्र प्रतिमा की छाया दिखायी पड़ी–यह छाया चन्द्रमुखी की थी। जिसे पापिष्ठा कहकर सर्वदा घृणा की, आज उसी को जननी की बगल मे गौरवमय आसन पर आसीन देख उनकी आंखो से झर–झर जल झरने लगा। अब इस जीवन मे उससे फिर कभी भेट नही होगी और तो क्या वह बहुत दिन तक उनके विषय मे कोई खबर तक न पायेगी! तब भी पार्वती के पास चलना होगा। देवदास ने प्रतिज्ञा की थी कि एक बार वे और भेट करेगे। आज उस प्रतिज्ञा को पूर्ण करना होगा। रास्ता अच्छा नही है। वर्षा के कारण कही–कही जल जमा हो गया है और कही अगल–बगल की पगडंडी कटकर गिर पड़ी है। सारा रास्ता कीचड़ से भरा हुआ है। बैलगाड़ी हचक–हचक कर चलती है। कही उतर कर चक्का ठेलना पड़ता है, कही बैलो को बेरहमी के साथ मारना पड़ता है–चाहे जिस तरह से हो, यह सोलह कोस का रास्ता तय करना ही होगा। हर–हर करके ठंडी हवा बह रही थी। आज भी उन्हे संध्या के बाद विषम ज्वर चढ़ आया। उन्होने डरकर पूछा–'गाड़ीवान, और कितना चलना होगा?'

गाड़ीवान ने जवाब दिया–'बाबू, अभी आठ–दस कोस और चलना है।'

'जल्दी से चलो, तुम्हे अच्छा इनाम मिलेगा।'–जेब मे सौ रुपये का नोट था, उसी को दिखलाकर कहा–'जल्दी चलो, सौ रुपये इनाम दूंगा।'

इसके बाद कब और किस भांति सारी रात बीत गयी–देवदास को इसकी खबर नही। बराबर अचेत रहे। सुबह जब ज्ञान हुआ तो कहा–'अरे अभी कितनी दूर है? क्या इस रास्ते का अन्त नही होगा?'

गाड़ीवान ने कहा–'अभी छः कोस है।' देवदास ने एक गहरी सांस लेकर कहा–'जरा जल्दी चलो, अब समय नही है।'

गाड़ीवान इसे समझ न सका, किन्तु नये उत्साह से बैलो को ठोक–ठाककर और गाली–गलौज देकर हांकने लगा। प्राणपण से गाड़ी चल रही थी, भीतर देवदास छटपटा रहे थे। एकमात्र यही विचार चक्कर लगा रहा था कि भेट होगी या नही? पहुंच सकेगे या नही? दोपहर के समय गाड़ीवान ने बैलो को भूसी खाने को दी, स्वयं भी दाना पानी किया। फिर पूछा–'बाबू, आप कुछ अन्न–जल नही करेगे?'

'नही, बड़ी प्यास लगी है, थोड़ा पानी दे सकते हो?'

उसने पास की पोखरी से पानी ला दिया। आज सन्ध्या के बाद बुखार के साथ देवदास की नाक की राह बूंद–बूंद खून गिरने लगा। उन्होने भर–जोर नाक को दबाया। फिर मालूम हुआ कि दांत के पास से खून बाहर आ रहा है। सांस लेने मे भी कष्ट होने लगा। हांफते–हांफते कहा–'और कितनी दूर...?'

गाड़ीवान ने कहा–'दो कोस और है। रात को दस बजे पहुंचेगे।'

देवदास ने बड़े कष्ट के साथ रास्ते की ओर देखकर कहा–भगवन!'

गाड़ीवान ने पूछा–'बाबू, कैसी तबीयत है?

देवदास इस बात का जवाब नही दे सके। गाड़ी चलने लगी, पर दस बजे नही पहुंची। लगभग बारह बजे रात को गाड़ी हाथीपोता के जमीदार के मकान के सामने पीपल के पेड़ के नीचे आकर खड़ी हुई।

गाड़ीवान ने बुलाकर कहा–'बाबू, नीचे उतरिये।'

कोई उत्तर नही मिला। तब उसने डरकर मुंह के पास दीया लाकर देखा, कहा–'बाबू, क्या सो गये है?'

देवदास देख रहे थे, होठ हिलाकर कुछ कहा, किन्तु कोई शब्द नही हुआ। गाड़ीवान ने फिर बुलाया–'बाबू!'

देवदास ने हाथ उठाना चाहा, किन्तु उठा नही सके। केवल दो बूंद आंसू उनकी आंखो के कोण से बाहर ढुलक पड़े। गाड़ीवान ने तब अपनी बुद्धि के अनुसार बांसो को बांधकर एक पलंग बनाया, उसी पर बिस्तर बिछाकर बड़े कष्ट से देवदास को लाकर सुला दिया। बाहर एक मनुष्य भी दिखायी नही पड़ता था। जमीदार के घर मे सब लोग सो रहे थे। देवदास ने अपनी जेब से बड़े कष्ट से सौ रुपये का एक नोट बाहर निकाला। लालटेन की रोशनी मे गाड़ीवान ने देखा कि बाबू उसी की ओर देख रहे है, परन्तु कुछ कह नही सकते है। उसने अवस्था देखकर नोट लेकर चादर मे बांध लिया। शाल से देवदास का सारा शरीर ढंका था, सामने लालटेन जल रही थी और पास मे नया साथी गाड़ीवान था।

पौ फटी। सुबह के समय जमीदार के घर से लोग बाहर निकले। एक आश्चर्यमय दृश्य! पेड़ के नीचे एक आदमी मर रहा था। देखने से सद्‌कुल का जान पड़ता था। शरीर पर शाल, पांव मे चमकता हुआ जूता, हाथ मे अंगूठी पडी़ हुई थी। एक–एक करके बहुत–से लोग जमा हो गये। क्रम से भुवन बाबू के कान तक यह बात पहुंची, वे डॉक्टर को साथ लेकर स्वयं आये। देवदास ने सबकी ओर देखा; किन्तु उनका कंठ रूद्ध हो गया था–एक बात भी नही कह सके केवल आंखो से जल बहता रहा। गाड़ीवान जो कुछ जानता था, कह सुनाया, परन्तु उससे कुछ विशेष बाते नही मालूम हुई। डॉक्टर ने कहा–'ऊर्ध्व श्वास चल रहा है, अब शीघ्र ही मृत्यु होगी।'

सबने कहा–'आह!'

घर मे ऊपर बैठी हुई पार्वती ने यह दयनीय कहानी सुनकर कहा–'आह!'

किसी एक आदमी ने तरस खाकर दो बूंद जल और तुलसी की पत्ती मुंह मे छोड़ दी। देवदास ने एक बार उसकी ओर करूण–दृष्टि से देखा, फिर आंखे मूंद ली। कुछ क्षण सांस चलती रही, फिर सर्वदा के लिए सब शान्त हो गया। अब कौन दाह–कर्म करेगा, कौन छुएगा, कौन जाति है आदि विविध प्रश्नो को लेकर तर्क–वितर्क होने लगा। भुवन बाबू के पास के पुलिस स्टेशन मे इसकी खबर दी। इंसपेक्टर आकर जांच–पड़ताल करने लगे। प्लीहा और फेफड़े के बढ़ने के कारण मृत्यु हुई है, नाक और मुख मे खून के दाग लगे है। जेब से दो पत्र निकले। एक तालसोनापुर के द्विजदास मुखोपाध्याय ने बम्बई के देवदास को लिखा था कि रुपये का इस समय प्रबन्ध नही हो सकता। और एक काशी से हरिमती देवी ने उक्त देवदास को लिखा था कि कैसे हो?

बाएं हाथ मे अंग्रेजी मे नाम का पहला अक्षर गुदा हुआ था। इन्सपेक्टर ने निश्चित करके कहा–'यह मनुष्य देवदास है।'

हाथ मे नीलम की अंगूठी थी–दाम अन्दाजन डेढ़ सौ था। शरीर पर एक जोड़ा शाल था–दाम अन्दाजन दो सौ था। कोट, कमीज, धोती आदि सब लिखे गये। चौधरी और महेन्द्रनाथ दोनो ही वहां पर उपस्थित थे। तालसोनापुर का नाम सुनकर महेन्द्र ने कहा–'छोटी मां के मायके के तो नही...!'

चौधरी जी ने तुरन्त बात काटकर कहा–'वह क्या यहां पर शिनाख्त करने आवेगी?'

दारोगा साहब ने हंसकर कहा–'कुछ पागल तो नही हो।'

ब्राह्मण का मृत–देह होने पर भी गांव के किसी ने स्पर्श करना स्वीकार नही किया, अतएव चांडाल आकर बांध ल गये। फिर किसी सूखे हुए पोखरे के किनारे आधे झुलसे हुए शरीर को फेक दिया, कौवे और गिद्ध उस पर आकर बैठ गये, सियार और कुत्ते परस्पर कलह मे प्रवृत हुए। तब भी जिस किसी ने सुना, कहा–'आह!' दास–दासी भी जहां–तहां भी उसकी चर्चा करने लगे–'कोई बड़े आदमी थे! दो सौ रुपये का शाल, डेढ़ सौ रुपये की अंगूठी, सब दारोगा के पास जमा है; दो चिट्ठी थी वे भी उन्ही लोगो ने रख ली है।'

यह सब समाचार पार्वती के कान तक भी पहुंचे; किन्तु वह आजकल बड़ी अनमनी रहती है, किसी विषय पर विशेष ध्यान नही देती। अस्तु, इस व्यापार के विषय मे भी कुछ ठीक नही समझ सकी। पर जब सभी के मुख पर इस चर्चा को पाया तो पार्वती ने भी इसके विषय मे कुछ विशेष जानने की इच्छा से एक दासी से पूछा–'क्या हुआ है? कौन मरा है?'

दासी ने कहा–'आह, यह कोई नही जानता मां! पिछले जन्म का कोई यहां की मिट्टी का धरता था, वही यहां केवल मरने आया था। कल सारी रात यहीं पर पड़ा रहा। आज सुबह मर गया।'

पार्वती ने एक लम्बी सांस लेकर कहा–'क्या उसके बारे मे कोई कुछ नही जानता?'

दासी ने कहा–'महेन्द्र बाबू जानते होगे, मै कुछ नही जानती।'

महेन्द्र की बुलाहट हुई। उन्होने कहा–'तुम्हारे देश के देवदास मुखोपाध्याय थे।'

पार्वती महेन्द्र के अत्यन्त निकट सरक आयी, एक तीव्र दृष्टि से देखकर पूछा–'क्या देव दादा? कैसे जाना?'

'जेब मे दो चिट्ठियां थी। एक द्विजदास की...'

पार्वती ने बाधा देकर कहा–'हां, उनके बड़े भाई की।'

'और एक काशी से हरिमती देवी ने लिखा था...'

'हां, वे मां है।'

'हाथ पर नाम गुदा था...'

पार्वती ने कहा–'हां, जब पहले–पहल कलकत्ता गये थे तो लिखाया था।'

'एक नीलम की अंगूठी थी...'

'पिता के समय मे उसे बड़े चाचा ने दिया...मै जाऊंगी...'

कहते–कहते पार्वती दौड़ पड़ी। महेन्द्र ने हत्बुद्धि होकर कहा–'ओ मां, कहां जाओगी?'

'देवदास के पास।'

'वे अब नही है, डोम ले गये।'

'अरे, बाप रे बाप!'–कहकर रोती–रोती पार्वती दौड़ी।

महेन्द्र ने दौड़कर सामने आकर बाधा दी। कहा–'क्या पागल हुई हो, मां! कहां जाओगी?'

पार्वती ने महेन्द्र की ओर एक तीव्र दृष्टि से देखकर कहा–'महेन्द्र, क्या मुझे सचमुच पागल समझ रखा है? रास्ता छोड़ो।'

उसकी ओर देखकर महेन्द्र ने रास्ता छोड़ दिया, चुपचाप पीछे–पीछे चलने लगा। बाहर तब भी

नायब-गुमाश्ता आदि काम कर रहे थे। वे लोग देखने लगे। चौधरी जी ने चश्मा लगाकर पूछा-'कौन जा रहा है?'

महेन्द्र ने कहा-'छोटी मां।'

'यह क्यो? कहां जाती है?'

महेन्द्र ने कहा-'देवदास को देखने।'

भुवन चौधरी ने चिल्लाकर कहा-'तुम सभी की बुद्धि मारी गयी है! पकड़ो-पकड़ो, पकड़कर उसे ले आओ। सब पागल हो गये! ओ महेन्द्र, जल्दी करो, दौड़ो!'

इसके बाद नौकर-नौकरानियो ने मिलकर पार्वती को पकड़ा और उसकी मूर्च्छित देह को भीतर ले गये। दूसरे दिन उसकी मूर्च्छा टूटी, पर उसने कोई बात नही कही, केवल एक दासी को बुलाकर पूछा-'रात को वे आते थे या नही? सारी रात...!'

इसके बाद पार्वती चुप हो रही।

अब इतने दिनो बाद पार्वती का क्या हुआ, वह कैसी है, यह हम नही जानते; जानने की इच्छा भी नही होती। केवल देवदास के लिए ह्दय बहुत क्षुब्ध रहता है। आप लोगो मे से भी जो कहानी को पढ़ेगे, सम्भवत: मेरे ही समान क्षुब्ध होगे। फिर भी यदि देवदास के समान हत्भाग्य, असंयमी और पापिष्ठ के साथ किसी का परिचय हो तो वह उनके लिए ईश्वर से प्रार्थना करे, प्रार्थना करे कि और चाहे जो हो, पर उनकी जैसी मृत्यु किसी की न हो! मृत्यु होने मे कोई हानि नही है, किन्तु उस समय एक स्नेहमयी हाथ का स्पर्श सिर पर अवश्य रहे, एक करूणार्द्र मुख को देखते-देखते इस जीवन का अन्त हो। जिससे मरने के समय किसी की आंखो का दो बूंद जल देखकर वह शान्ति से मर सके।